गुरूपूर्णिमा अषाढ़ शुक्ल 15 वि0सं0 2074, 09 जुलाई 2017

वाल्यूम-1 अंक-2

अखण्ड विश्वम्भरानन्द ज्ञान सरिता

अर्द्ध वार्षिक

श्री अखण्ड विश्वम्भरानन्द संत आश्रम

वेदान्त नगर, सीपरी बाजार, झाँसी (उ.प्र.)

अखण्ड विश्वम्भरानन्द ज्ञान सरिता

Vol - 1 गुरू पूर्णिमा 09 जुलाई, 2017 अषाढ़ शुक्ल 15 वि.सं. 2074 अंक – 2

स्वामी श्री अखण्ड विश्वम्भरानन्द संत आश्रम के लिये प्रकाशक, मुद्रक, सम्पादक स्वामी शुकदेवानन्द द्वारा वीर बुन्देलखण्ड प्रेस, 178, गुंसाईपुरा, झांसी से मुद्रित व श्री अखण्ड विश्वम्भरानन्द संत आश्रम, लहर देवी रोड, वेदान्त नगर, सीपरी बाजार, झंसी से प्रकाशित।

–सम्पादक, स्वामी शुकदेवानन्द

संस्थापक एवं संरक्षक
स्वामी हीरानन्द जी महाराज एवं
श्री आर. के. मिश्रा
श्री अखण्ड विश्वम्भरानन्द संत आश्रम धर्मार्थ समिति
लहरगिर्द नालगंज
सीपरी बाजार, झांसी (उ0प्र0)

प्रधान सम्पादक :
स्वामी शुकदेवानन्द जी
प्रबन्धक :
श्री अखण्ड विश्वम्भरानन्द संत आश्रम धर्मार्थ समिति

सम्पादक मण्डल :
श्री प्रमोद कुमार गुप्ता
श्रीमती कुमकुम बिसारिया
डॉ. रंजना शर्मा

प्रकाशन कार्यालय :
श्री अखण्ड विश्वम्भरानन्द संत आश्रम
धर्मार्थ समिति लहर गिर्द, नालगंज
सीपरी बाजार, झांसी (उ0प्र0)
पिन कोड – 284003
फोन नं0 : (0510) 2360251

अर्द्धवार्षिक
मूल्य : निःशुल्क वितरण के लिये

मुद्रक : **वीर बुन्देलखण्ड प्रेस**
गुसाईपुरा, झाँसी (उ.प्र.) फोन नं0 0510–2332931

Email : veerbundelkhandpress@gamil.com

अनुक्रमणिका

क्रम.	विवरण	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	स्वामी शुकदेवानन्द	3
2.	गीता ज्ञान	स्वामी हीरानन्द	4
3.	विज्ञान और आध्यात्मिक	आर. के. मिश्रा	5
4.	ऊँ गुरू परमात्मने नमः	श्रीमती रूकमणी शर्मा	7
5.	परम पूज्यीय 108 श्री स्वामी शुकदेवानन्द जी का योग शिविर में ''विंशति पुष्प''	प्रमोद कुमार गुप्ता	9
6.	सोहमस्मि इति वृत्ति अखंडा	पं. चन्द्रिका प्रसाद त्रिपाठी	11
7.	प्रसन्नता	डॉ. रंजना शर्मा	12
8.	''सामन्जस्य'' नवीन पुरातन में......	श्रीमती कुमकुम बिसारिया	14
9.	अकृत परमात्मा	प्रमोद कुमार गुप्ता	16
10.	गुरू आरती	इं. जे. पी. गंगेले (लंकेश)	18
11.	परमपूज्य गुरूदेव का आशीर्वाद	ब्रह्मलीन स्वामी विश्वम्भरानन्द जी	19
12.	प्रातःकाल उठि के रघुनाथा	राघवेन्द्र ब्रह्मचारी	22
13.	मानव जीवन की सफलता एवं सोपान	श्रीमती कुमकुम बिसारिया	24
14.	भजन, सतगुरू की महिमा	श्रीमती कृष्णा श्रीवास्तव	25
15.	भक्ति	ब्रह्मचारिणी गार्गी चैतन्य	26
16.	बिनु सत्संग विवेक न होई	पं. वेद प्रकाश त्रिवेदी	28
17.	राम से बड़ा राम का नाम	देवी शंकर मिश्रा	30
18.	सत्य परमोधर्मः	दृष्टांत	32

सम्पादकीय..............

हमारे जीवन में प्रतिदिन सुषुप्ति एवं स्वप्न अवस्थाऐं आती रहती हैं और जागने पर हम उनको मिथ्या मान लेते हैं। यह प्रक्रियाऐं सभी के जीवन में देखी जाती हैं। किन्तु अधिकांश व्यक्ति इन प्रक्रियाओं पर विचार ही नहीं करते कि ये जो स्वप्न निद्रावस्था में देखा गया, वह किसने देखा। इस सबको देखने वाला क्या यह जड़ शरीर था जो चार पाई पर पड़ा था या इसके अलावा भी कोई स्वप्न एवं सुषुप्ति का साक्षी है। जो हमारी जाग्रत अवस्था की क्रिया कलापों का साक्षी रहता है, क्या वही स्वप्न एवं सुषुप्ति का भी साक्षी है।

अगर हम इस पर विचार करें तो देखते हैं कि हमारे जीवन में जाग्रत, स्वप्न एवं सुषुप्ति यह तीनों अवस्थाऐं आने–जाने वाली रहती हैं। किन्तु यह अवस्थाऐं ऐसी हैं जैसे कि एक मिट्टी का लौंदा लेकर हम उसको गोलाकार आकृति दे दें उसके बाद फिर उसको चपटा करें तो चपटा किये जाने पर गोलाई नही रह जाती। अब चपटा मिटाकर लम्बी सी आकृति दे दें तो चपटी अथवा गोलाई वाली आकृति नहीं रह जाएगी, इन सब परिवर्तनों के होते हुए भी मिट्टी ज्यों की त्यों रहेगी। बिना मिट्टी के कोई भी आकृति का होना सम्भव नहीं है। इसी प्रकार जाग्रत स्वप्न एवं सुसुप्ति अवस्थाओं के साक्षी के रूप में ''मैं'' हमेशा रहता है। जब हम स्वप्न देखते हैं तब यह स्थूल शरीर निश्चेष्ट पड़ा रहता है और उस अवस्था में एक नये दृश्य की रचना हो जाती है। जिसमें हमारा एक स्वप्न शरीर होता है जो स्वप्न के सारे दृश्य को देखता है तथा जाग्रत अवस्था की ही भाँति इस स्वप्न शरीर को सत्य समझता है और उसमें अपने को कर्ता–भोक्ता समझकर सुखी–दुखी होता रहता है।

निद्रा से जागने पर कहता है कि आज बहुत अच्छा अथवा बड़ा भयानक स्वप्न देखा किन्तु जाग्रत अवस्था में आ जाने से उस सबको झूठा समझ लेता है। जिसको हम स्वप्न कहते है वह हमारे जीवन में हम ही ने, जो अपनी वासनाओं के अनुसार कर्म किये, उन कर्मो के अनुभव ही स्वप्न बनकर प्रकट होते हैं। इसी प्रकार हमारी जाग्रत अवस्था के जो तीव्र संस्कार होते हैं वह इस स्थूल शरीर के छूटने पर अगले जन्म के कारण बन जाते हैं।

यह जन्म जाग्रत, स्वप्न अवस्थाओं की भाँति बदलने वाला है और जैसे मिट्टी की आकृतियों में मिट्टी के बिना कोई भी आकृति नहीं हो सकती, उसमें मिट्टी ही सत्य है उसका कभी अभाव नहीं है। इसी प्रकार हमारे जीवन में साक्षी ही सत्य है साक्षी का कभी अभाव नहीं होता। जैसे जाग्रत, स्वप्न, सुसुप्ति अवस्थाऐं बदलती रहती हैं उसी प्रकार बचपन, जवानी एवं बुढ़ापा बदलता रहता है। जवानी में बचपन नहीं रहता, न ही बचपन के स्वप्न ही रहते हैं। जवानी के निकलने पर बुढ़ापा आ जाता है, तो जो हम बचपन अथवा जवानी में रहे एवं वही बुढ़ापे में भी होते हैं, इन सभी अवस्थाओं का साक्षी ही सत्य है। यह अवस्थाऐं तो आने–जाने वाली हैं तथा कर्म एवं वासना के अनुसार शरीर की मृत्यु होने के पश्चात् अगला जन्म होता है। लेकिन यह सब जन्म मिथ्या ही है इनमें साक्षी ही सत्य है। वह साक्षी अद्वितीय एवं अविनाशी है, वही आत्मा है, वही ''मै'' हूँ।

– स्वामी श्री शुकदेवानन्द जी महाराज

गीता ज्ञान

श्लोक– **वासाँसि जीर्णानि यथा विहाय। नवानि गृहणाति नरोडपराणि।।**
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।।

अर्थ– जैसे मनुष्य पुराने वस्त्र को त्यागकर दूसरे नये वस्त्रो को ग्रहण करता है वैसे जी जीवात्मा पुराने शरीर को त्यागकर नये शरीर को प्राप्त होता है।

भावार्थ– वासांसि माने होता है वस्त्र जीर्णानि माने जीर्ण हो गया सड़गया भगवान कहते है जैसे वस्त्र पुराना पड़ जाता है उसे व्यक्ति बदलकर दूसरा नया धारण कर लेता है उसी तरह यहाँ भगवान ने शरीर को भी वस्त्र कहाँ है तो भगवान कहते है। यह शरीर रूपी वस्त्र पुराना पड़ जाता है तो यह जीवात्मा उस शरीर को त्याग कर नया शरीर ग्रहण कर लेता है उसमें यह नाना शरीर बनते और मिटते रहते है जिस तरह पुराने होन पर हम वस्त्र बदलते रहते है। उसी तरह यह शरीर बदलते है आत्मा नित्य का जनम मरण नहीं होता आत्मा सदा एकसी रहती है तो देखो विचार करो जैसे किसी सयाने व्यक्ति को पुराना वस्त्र बदल कर नया पहिनाया जाय तो बताओ वह व्यक्ति प्रसन्न होगा या रोयेगा तो कहना पड़ेगा प्रसन्न होगा क्यों कि नया वस्त्र पहिनने में सभी को प्रसन्ना होती है। और उसे यह ज्ञान है कि यह पुराना बदल जायगा तो हमें नया पहिनने को मिल जायगा। अब विचार करे किसी छोटे बालक का वस्त्र मलिन पड़ गया पुराना पड़ गया माँ चाहती है कि हम इसे बदल कर नया पहिनादें तो वह बालक रोता है कि प्रसन्न होता है तो कहना पड़ेगा बालक रोता है क्योकि उसे ज्ञान नहीं है अब यहाँ विचार करना है कि कौन बालक है कौन सयाने है। तो रामायण में लिखा है कि :–

मोरे प्रोढ़तनय सम ज्ञानी। बालक सम मम दास अमानी।।

भगवान कहते है कि ज्ञानी मेरे सयाने पुत्र की तरह है और मेरे जो दास हैं भक्त हैं वे बालक की तरह हैं भगवान कहते हैं दोनों मेंरे ही है। परन्तु रोना किसका छूटेगा सयाने का कि बालक का तो कहना पड़ेगा सयाने का। इस लिये सयाने हैं ज्ञानी इससे ग्यान प्राप्त कर लेना जरूरी है जीवन रहे तो भक्ति करो कोई हानि नहीं क्योंकि भक्ति के बिना अंतःकरण की शुद्धि नहीं होती है और अतः करण की शुद्धि के बिना ग्यान हृदय में ठहरता नहीं है और ज्ञान यही है कि मैं शरीर नहीं हूँ मैं आत्मा हूँ और आत्मा ही परमात्मा है।

गीता के दशवें अध्याय का बीसवाँ मन्त्र है –

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थिताः। अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एवच।।

भगवान ने कहा है अर्जुन में सब भूतों के हृदय में स्थित सबकी आत्मा हूँ तथा सम्पूर्ण भूतो का आदि मध्य और अन्त भी मै ही हूँ। जब भगवान स्वयं कह रहें है कि सबकी आत्मा मै हूँ इस लिये भगवान ही सबकी मैं है।

सद्गरू पदरजेच्छु
स्वामी हीरानन्द
संचालक– अखण्ड विश्वम्मरानन्द
सन्त आश्रम झाँसी

विज्ञान और आध्यात्मिक

गुरूदेव की वाणी का 'संग्रह' अखण्ड वेदान्त संग्रह में उपलब्ध है। गुरूदेव ने अपने आशीर्वचन में अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए लिखा ''जीवन में आध्यात्मिक चक्र होना अनिवार्य है। बिना आध्यात्मिकता के सुख शान्ति का स्थान नहीं। अपने जीवन में विज्ञान को लायें क्योंकि यह विज्ञान का युग है परन्तु जन्मजात आध्यात्मिक जागरूकता को प्रलुप्त न होने दें।''

उन्नीसवीं शताब्दी जहाँ औद्योगिकता की थी, बीसवीं शताब्दी इलैक्ट्रिकल और इलैक्ट्रोनिक तथा कम्प्यूटर की शताब्दी कही जाती है। इसी प्रकार इक्कीसवीं शताब्दी आटोमाइजेशन की शताब्दी के रूप में स्थान कर रही है। बड़े–बड़े देशों की फैक्टरियों में मनुष्य का स्थान रोबोट लेते जा रहे हैं। हर कार्य अब इन्टरनेट के माध्यम से घर अथवा अपने निज स्थान पर बैठे–बैठे हो जाता है। धीरे–धीरे लोगों को बैंक जाने, खरीदारी करने या बाजार इत्यादि जाने की आवश्यकता गौड़ होती जा रही है। सरकार की पहल डिजिटल इंडिया पर कार्यवाही अत्यंत व्यापक रूप से अग्रसर है। इन्टरनेट के माध्यम से हर जरूरत का कार्य एवं ट्रांजेक्शन बगैर किसी से मिले, कहीं गये अथवा बातचीत किये बगैरह मोबाईल फोन अथवा कम्प्यूटर के माध्यम से करना संभव हो गया है। उपरोक्त के कहने का तात्पर्य केवल इतना है कि आज विज्ञान का प्रवेश हमारे दैनिक जीवन में पूर्ण रूप से सम्मिलित हो गया है। विज्ञान ने हमारी दैनिक जीवनी को बहुत सरल बना दिया है। इसका असर सबसे पहले हमारी सोशल लाइफ पर पड़ा हैं लोगों का मिलना जुलना सीमित होता जा रहा है। इन सब का असर स्वास्थ्य पर तो हो ही रहा है साथ ही साथ सामाजिक मेल–जोल पर भी पड़ रहा है। आज का नागरिक सभी सुविधाएं होते हुए भी टेन्शन भरी जिन्दगी जी रहा है। सुविधाएं होते हुए भी उसे न तो मानसिक शांति है और ना ही आनन्द की प्राप्ति हो रही है।

आनन्द बगैर आध्यात्मिक चक्र के प्राप्त नहीं हो सकता। अध्यात्म एब्सट्रैक्ट है उसे आप प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से ज्ञात नहीं कर सकते हैं उसकी अनुभूति अपरोक्ष रूप में ही प्राप्त की जा सकती है। अध्यात्मक के चक्र को जीवन में लाने हेतु सबसे पहली सीढ़ी है विवेक की उत्पत्ति। विवेक के द्वारा हम सत और असत में अंतर ज्ञात कर सकते हैं। असत के पीछे भागना मृगीचिका के पीछे भागने जैसा है। जिस प्रकार मरिभूमि में मृगीचिका के पीछे भागते मनुष्य को जल की प्राप्ति नहीं होती है। विषयों में मिलने वाली खुशी भागते मनुष्य को कभी आनन्द की प्राप्ति नहीं होती है, उसी प्रकार असत के पीछे भागते मनुष्य को कभी आनन्द की प्राप्ति नहीं होती है। विषयों से मिलने वाली खुशी क्षणिक होती है और मन के एक विषय से दूसरे विषय पर विचरण करने से मन असमन्जस की स्थिति में रहता है। इन्द्रियों की तुष्टि होते हुए भी आत्मिक आनन्द का निग्रह रहता है।

आध्यात्मिकता जीवन में होना अनिवार्य है। इसी के द्वारा अपने निज स्वरूप का ज्ञान हो सकता है। यह ही आत्मा के विवेचन का स्तोत्र हैं। इसी से विवेक की उत्पत्ति होती है और इसी के प्रादुर्भाव

से सत और असत की समझ आती है। यही हमें असत से विमुख कराता है और सत की खोज में अग्रेसित करता है। इसी के द्वारा वैराग्य एवं षढ़ सम्पत्ति (सम, दम, तितिक्षा, उपरति इत्यादि) एवं मुमुक्षत्व की इच्छा प्राप्त होती है। अहम् का निग्रह एवं आत्मन का ब्रह्म की एकरसता ही तत्वज्ञान है। तत्वज्ञान को जान लिया तो आत्मानन्द में स्थित होने में कोई रूकावट नहीं है। सभी भेदों का संहार हो जाता है और ब्रह्म की सर्वव्यापकता में कोई भेद नहीं बचता।

गुरूदेव कहा करते थे कि जब तक समाज में रह रहे हैं सामाजिक व्यवहारिकता का पूर्ण पालन करना चाहिए परन्तु कभी भी अपने निज स्वरूप पर संदेह नहीं होना चाहिए। इस प्रकार व्यवहार करने से आप प्रारब्ध अर्जित करना बंद कर देते हैं। जब आपमें कर्ता का अभिमान एवं बोध ही नहीं रहा। यह दृढ़ विश्वास कर लिया कि मैं कर्ता नहीं हूँ, अपितु केवल निमित्त मात्र हूँ। करने वाला, कर्म एवं कारण इन सबसे मैं परे हूँ। असंग, एकनिष्ठ, दृष्टा मात्र हूँ तो फिर न अन्तःकरण रहा और न ही उसके शुद्धि का विचार बचा। ऐसी परिस्थिति में मन का समावेश आत्मा में केन्द्रित हो जाता है और आप शरीर का बोध छोड़कर शरीरी अर्थात् दृष्ट मात्र रह जाते हैं।

कभी यह विस्मरण नहीं होने देना चाहिए कि आप का निज स्वरूप सच्चिदानन्द स्वरूप है। आप सत, चैतन्य एवं आनन्द से परिपूर्ण है। जब इस तरह की भावना का प्रादुर्भाव आपके दैनिक नित्य व्यवहार में आ जाएगा तो आप आज के वैज्ञानिक युग में भी निरंतर आत्मानन्द का अनुभव करते हुए सुख शांति मय जीवन का व्यापन कर सकेंगे।

– आर0 के0 मिश्रा

दिल्ली

गुरूदेव कहते हैं – सत् चित् आनन्द रूप ब्रह्म मैं हूँ, इससे मेरी ही सत्यता सब अनात्म पदार्थों में प्रतीत होती है। पर आत्मा के सिवाय वस्तुतः सत्य भी कुछ नहीं है, इसलिए सत्य स्वरूप आत्मा को बतलाने वाला जो ज्ञान है उसे भी श्रुति ने सत्य कहा है। जैसे विचारवान व्यक्ति के विवेक युक्त यथार्थ शब्दों को भी सत्य मान लिया जाता है। फिर अज्ञान और उससे उत्पन्न प्रपंच को नाश करने वाला आत्मज्ञान होता है उसको श्रुति ने सत्य ही कहा है।

पाठकों से निवेदन

गुरू भक्त अपनी ई–मेल पर ''अखण्ड विश्वम्भरानन्द ज्ञान सरिता'' पत्रिका निःशुल्क चाहते हैं, तो उक्त ई–मेल आईडी neerajnikhra@gmail.com पर संपर्क करके प्राप्त कर सकते है।

!! ऊँ गुरू परमात्मने नमः!!

विचार यह करना है कि देव दुर्लभ शरीर को पाकर अगर बोध प्राप्त कर लिया, आत्म साक्षात्कार हो गया तो सब कुछ हो गया क्योकि बिन ज्ञान के चाहे कर्म या उपासना या ध्यान या प्राणायाम, धारण, जय, तप आदि जो कुछ भी करोगे सब पेंसिल की लकीर की तरह है। जैसे पेंसिल की लकीर खींचते हो तो रबड़ से मिट जाती है क्योकि मन का माना हुआ बिगड़ता है।

दोहा— जल की मन की एक गति, नीचे हो जाय।
बड़े यतन से राखिये तब ऊँचो ठहराय।।

क्योंकि मन के मानने मे संदेह है। चाहे अपने मन से माना हुआ करो चाहे दूसरे के कहने से करो, क्योकि जो दूसरे के मन का माना है इसमें तीसरा कहेगा; यह ठीक नहीं इसमें संदेह है और गीता में कहा है— ''संशयात्मा विनश्यन्ति'', अर्थात जहाँ संशय भ्रम है, वहाँ तक जन्म मरण का दीर्घ रोग है। इसी से महापुरूष मानते नहीं, दिखाते है, जनाते है।

सत्गुरू देव भगवान कहा करते थे— देखो ! देखने वाले को देखो। यह सूत्र है जो सबसे होकर सबको देख रहा गवाही दे रहा है। यह पृथ्वी है, यह आकाश है, यह पिण्ड है यह ब्रह्मांड है जिसके अस्तित्व में यह सब ठहरा है। सर्वका मूलाधार है, सर्वाधिष्ठान है— सोऽहम् शिवोऽहम्। सदैव सौम्ये मग्नासीत् ''सृष्टि के आदि में एक सत् ही था। अन्य कुछ नहीं था तो सत् ही है। इसी से 'मै' हूँ इससे मै हूँ के बीच में जो तुमने लगा लिया हैं उसी का नाम ''माया'' है। मै ज्ञानी हूँ, मै अज्ञानी हूँ, मै बंधा हूँ मै मुक्त हूँ, मै पापी हूँ, मै पुण्यी हूँ, मै ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र हूँ। मै ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानपृस्थ, संयासी हूँ। मै हूँ के बीच में जो तुमने लगाया है, यह सब 'माया' है क्योकि जो आदि व अंत में नही वह सभी माया है। इससे ज्ञान, अज्ञान, बन्ध—मोक्ष, पाप—पुण्य, वर्णाश्रम सभी माया है।

आत्मा में नही क्योकि आत्मा निष्क्रिय है असंग है। सारांश यह है कि मै आत्मा जानने की चीज नही, मानने—मनाने की नही—मानो तो है ना मानो तो है, जानो तो है न जानो तो भी है। 'मै' प्रत्येक स्थिति में है। चाहे ध्यान हो, धारणा हो, समाधि हो, कर्म हो, उपासना हो, प्राणायाम हो, आसन हो, कोई भी कर्म हो, शारीरिक या मानसिक सबके आदि में अंत में मैं हूँ। इसकी किसी से गवाही नही लेनी है। मै स्वयं गवाह हूँ मन की सात्विकी, राजसी, तामसी सब वृत्तियों कि उत्पत्ति के पहले मै हूँ व सबके मध्य में भी मै हूँ जानने वाला व सबके अन्त में मै हूँ। मै स्वतः सिध्द हूँ।

दोहा— मै की ममता छोड़कर मै की करिये जाँच।
सो मै सबसे परे हूँ, तीन चार अरू पांच।।

अर्थ— ममत्व त्याग कर विचार करों, तीन शरीर (स्थूल, सुक्ष्म, काख, रजोगुण व तमोगुण) इनसे मै परे हूँ और चार मन, माया प्रकृति, जगत इनसे भी मै परे हूँ और पंचभूत, पंचकोष, पंच प्राण, पंचज्ञानेन्द्रिय, पंचकर्मेन्द्रिय इन सबसे मै परे हूँ। और इन सबके अन्त में मै हूँ। इन सबमें 'मै' ही कल्पित

हूँ। मैने ही ये सब कल्पना की है। इनका कोई अस्तित्व नहीं है। मैं सत् हूँ। सोऽहम्। वही मैं हूँ, जो सर्व त्रिपुटी के बनने में, स्थिर रहने में, मिटने में एक रस सर्व का आधार है वही मै हूँ।

मैं को इतना मिटा दे, कि तू ना रहे, मुझमे दुई की बू ना रहे।

दोहा– मैं के आगे मै खड़ो, मैं ना देख दिखाय।
यह मैं आगे से हटै तब वह मैं दर्शाय।।

अर्थ– मैंने आत्मा के आगे साढ़े 3 हाथ का शरीर खड़ा कर लिया है। इस शरीर को ही जिन्होने माना कि यही मै हूँ तो 74 लाख योनियों में भटकना पड़ेगा क्योकि एक में दो बालिश्त होते है और एक बालिश्त में 12 अंगुल हुए तो 7 बालिश्त (127=74) में बाहर सते चौरासी अंगुल हुए। इसी से चौरासी लाख कहा है इस देह को मैं मानना सबसे बड़ा पाप है। वही 74 लाख योनियों में जाता है। निष्पाप को पापी बना देता संताप है। सब पाप इसके पुत्र है सब पाप का ये बाप है। मैं ब्रह्म हूँ, मै ब्रह्म हूँ सबसे बड़ा यह जाप है।

अर्थ– यह शरीर मैं हूँ ऐसा मानना पाप है। मैं ब्रह्म हूँ ऐसा मानना सबसे बड़ा पुण्य है, सर्वश्रेष्ठ है।

स्वयं की कल्पना करके सर्वरूप भास रहा है। जो कुछ भी भास रहा है, प्रथम तो स्वयं का भान होगा तब पीछे अन्य की प्रतीति होगी। इससे यह जानकारी मिलती है कि मैं (आत्मा) सबसे पहले हूँ।

!!सोऽहम्!!

इसी की प्रत्येक समय स्थिति बनाए

भजन–

जिस करके सब सिध्द होता है, सोइ स्वरूप हमारा है
अस्ति भांति प्रिय पूर्ण ब्रह्म में नाम, रूप संसारा है

1. पहले अपनी अस्ति लेकर पीछे से आरोप हुआ।
ब्रह्मा विष्णु महेश शक्ति अरू, राम कृष्ण अवतारा है।
2. माया ईश्वर जीव अविद्या, यह सब मन के माने है।
आप सभी का ज्ञाता चेतन कल्पित का आधारा है।।
3. आत्म चेतन ब्रह्म अनामी नाम सभी तू धरता है।
नामी नाम न होत कभी भी आपहि आप अपारा है।।
4. वाच्य अर्थ को त्याग जरा विज्ञान लक्ष्य में चित दीजे।
आप सभी का गिनने वाला, सब गिनतिन से न्यारा है।।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

– रूकमणी शर्मा
मथुरा

परम पूज्यनीय १०८ श्री स्वामी शुकदेवानन्द जी का योग शिविर में ''विंशति पुष्प''

सृष्टि में चौरासी लाख योनियों का शास्त्रों में उल्लेख आया है उनमें मनुष्य योनि को सर्वश्रेष्ठ माना है। मनुष्य को परमात्मा ने सर्वाधिक बुद्धि प्रदान की है। संसार में हम जो कुछ भी व्यवहार करते हैं कर्मेन्द्रियों से ही करते हैं। कर्मेन्द्रियों को शक्ति प्राणों से मिलती है एवं ज्ञान हमें ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त होता है। जब मन ज्ञानेन्द्रिय सहित कर्मेन्द्रिय के साथ होता है तब हम कार्य करते हैं। संसार में जो कुछ भी सृजन होता है वह सभी ज्ञान और कर्म का समुच्चय है।

ज्ञानेन्द्रियाँ पांच प्रकार की होती है, यह अपने–अपने विषयों का ज्ञान रखती हैं और विषय भी पांच प्रकार के ही होते हैं। कानों से शब्द का बोध होता है, नेत्रों से रूप का, त्वचा से स्पर्श का, नासिका से गंध का एवं स्वाद का बोध जिह्वा से होता है। जिह्वा को रसना भी कहते हैं यह कर्मेन्द्रिय भी है एवं ज्ञानेन्द्रिय भी है वाणी के कारण यह कर्मेन्द्रिय कहलाती है। इन पांचों विषयों में संसारी जीव अटका रहता है। यहाँ तक कि एक–एक विषय में एक जीव अपने प्राण भी दे देता है जैसे हिरण को शब्द का आकर्षण बहुत होता है और बहेलिया वीणा बजाकर उसे पकड़ या मार डालता है, पतंगे रूप पर प्राण न्यौछावर कर देते हैं, हाथी स्पर्श के आकर्षण में मारा या पकड़ लिया जाता है, मछली स्वाद में मारी जाती है एवं भौरा कमल की गंध में फंसकर अपने प्राण खो देता है। अलग–अलग जीव अलग–अलग विषय में फंसा रहता है। फिर भी परमात्मा ने मनुष्य को सबसे अधिक बुद्धि प्रदान की है। इस बुद्धि के कारण ही मनुष्य विषयों में फंसता है एवं विषयों से सावधान रहते हुए संसार में अपना व्यवहार करता रहता है।

यह सृष्टि पंचभूतात्मक है और इस सृष्टि का निर्माण भी इन्ही पांच भूतों से हुआ है। सारा व्यवहार शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गंध में ही हो रहा है। मन जिस ज्ञानेन्द्रिय के साथ होता है, बुद्धि भी उसी के साथ हो जाती है। हमारी बुद्धि सावधान रहते हुए भौतिक एवं आध्यात्मिक अभ्योदय की ओर अग्रसर रहे, इसीलिए हमारे ऋषि मुनियों ने मनुष्य को चौरासी लाख योनियों में सबसे उत्कृष्ट कहा है ऋषि मुनियों ने हमारे जीवन में सोलह संस्कारों को जोड़ा है, इन्हीं संस्कारों के द्वारा मनुष्य के व्यक्त्वि का निर्माण होता है। यह संस्कार गर्माधान से प्रारम्भ होते है एवं गर्मास्था में माता–पिता का जैसा वातावरण होता है उसी का पूरा का पूरा प्रभाव गर्भस्थ शिशु पर पड़ता है। जैसे कि हिरण्य कश्यप की पत्नि कयाधू गर्भावस्था के समय नारद ऋषि के आश्रम में रहीं वहाँ ऋषि मुनियों के संग सत्संग करती रहीं इसीलिए तो उनकी गर्भस्थ संतान

प्रहलाद का जीवन एक ज्ञानी भक्त के रूप में संसार के समक्ष उभरा, दूसरा उदाहरण अभिमन्यु का है जिसने चक्रव्यूह के भेदन को अपने माता–पिता की चर्चा से, गर्भ में ही सीख लिया था किन्तु अन्तिम द्वार भेदन की चर्चा के समय उनकी माँ निद्रा से ग्रसित हो गई थी, जिसका परिणाम अभिमन्यु को चक्रव्यूह से न निकल सकने का कारण बना। इसलिए यह परमावश्यक है कि गर्भवती स्त्रियों का खानपान एवं वातावरण शुद्ध सात्विक ही हो। गर्भाधान संस्कार के बाद पंसवन, नालोच्छेदन, जातक कर्म आदि आते हैं जिनमें सबसे महत्वपूर्ण संस्कार यज्ञोपवीत होता है। जिसके बाद बालक ब्रह्मचारी अवस्था में विद्या अध्ययन धारण करता है और उसे संस्कार के द्वारा संध्यावंदन, देवपूजन आदि से देवऋण के प्रति उत्तरदायी बनाया जाता है। माता–पिता, गुरू की सेवा द्वारा अपने पूर्वजों, गुरूजनों की सेवा के प्रति उत्तरदायी और जागरूक बनाया जाता है। यह सब संस्कार मनुष्य की बुद्धि को परमार्जित करते है और ऐसा संस्कारित व्यक्ति देश, समाज एवं अपने परिवार के प्रति सदैव समर्पित रहता है।

उपनिषद् में कहा है इन्द्रिय ही घोड़े हैं क्योंकि संसार में सारा का सारा व्यवहार इन्हीं पांच ज्ञानेन्द्रियों, पांच कर्मेन्द्रियों, मन, बुद्धि, अहंकार एवं चित्त इन चौदह से ही हो रहा है। मन इनमें प्रमुख है इसीलिए मन को लगाम तथा बुद्धि को असवार कहा गया है। मन की लगाम बुद्धि के हाथ में रहे और बुद्धि परमात्मा से जुड़ी हो, ऐसा तभी सम्भव है जब हम स्वयं जागरूक रहते हुए अपने बच्चों के संस्कार एवं वातावरण पर ध्यान रखते हुए, उन्हें सत्य के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करते रहें।

– संकलनकर्ता
प्रमोद कुमार गुप्ता
''योग प्रशिक्षक'' झांसी

सर्वज्ञ :

जीव ईश्वर का ही अंश है, तत्वदर्शी की यह बात जिज्ञासु की समझ में नहीं आई तत्वदर्शी ने एक लोटा जल भरकर मंगवाया और जिज्ञासु से उसमें नाव चलाने को कहा जिज्ञासु ने असमर्थता बतलाई तो तत्वदर्शी ने कहा कि यदि इसी जल को पुनः गंगा में मिला दें तो उस पर नाव चलेगी। इसी प्रकार जीव सीमित है और ईश्वर असीम। यदि जीव अपनी संकीर्णता के बंधन काटकर महान बन जाए एवं अपने स्वरूप को पहचान ले तो वह ईश्वर जैसा ही सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान बन सकता है।

'सोहमस्मि इति वृत्ति अखंडा'

वेदोपनिषद में प्रतिपादित है कि ज्ञान से ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है, जो मानव जीवन का परम लक्ष्य हैं। पुरूषार्थ चतुष्टय–धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में अन्तिम पुरूषार्थ हैं। यदि मानव जीवन पाकर भी मुक्ति प्राप्त न हुई तो जीवन निरर्थक ही कहा जायेगा और भव सागर में जीवन–मरण का चक्र चलता ही रहेगा–

''पुनरपि जननम् पुनरपि मरणं, पुनरपि जननी जठरे शयनम्।

विवेक चूड़ामणि–अस्तु ज्ञान की बड़ी महिमा है। येन–केन प्रकारेण ज्ञान प्राप्त होना ही चाहिए। क्योंकि ज्ञानान् ऋते न मुक्तिः श्रीमद् भगवद्गीता में भी ज्ञान को पवित्रतम् बताया गया है– नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते। ज्ञान की यह पवित्रता ही अन्तः कलुषों को धो डालती है और आत्मदर्शन संभव हो जाता है। आत्म तत्व ही मुक्ति का स्वरूप है। द्वैत समाप्त हो जाता है और नानात्व का बोध नहीं रह जाता। यही मोक्ष है।

ज्ञान को दीपक से उपभित किया जाता है। दीपक प्रकाश का स्रोत है। ज्ञान भी प्रकाश ही है, जिसमें यथार्थ का दर्शन होता है। अनात्म और आत्म का भेद समझ में आ जाता है।

ज्ञानोदय से वृत्ति विकसित होती है यही वृन्ति 'सोऽहमस्मि, अर्थात वह मै हूँ– है। तत् त्वमसि– वह तू है, इसके ज्ञान से ही इसका का बोध होता है। गुरू ही के द्वारा दूसरा ज्ञान होता है। वेद् शाल उपनिषद आदि शास्त्र शब्द ज्ञान तो करा सकते है अनुभव तो गुरू के द्वारा ही संभव है, क्योकि गुरू ने अनुभव किया है। अनभुव ज्ञान ही 'तत्वमसि' को यर्थाथ बोध करा सकता है। शब्द ज्ञानी तो सोहम् सोहम् का उच्चारण मात्र करता है।

'सोहमहिम' वृन्ति उस परतर ब्रह्म में रमण करती है। ब्रह्म के अतिरिक्त उसे अन्य कुछ भी दिखाई नहीं देता। चिन्त में नाना प्रकार की वृत्तिया होती हैं जो माया तथा उसके सहयोगी काम क्रोध, मोह आदि से ग्रस्त रहती है। चिन्त को चंचल बनाये रहती हैं। साधक की साधनापथ में बाधक बनती है। किन्तु ज्ञान के प्रकाश में जो सोऽहमस्मि (वह मै हूँ) की वृन्ति सुदृढ़ होती है, वह अखण्ड होती है उसे मायाजन्य दोष प्रभावित नहीं कर पातें। इसी लिए इसे अरधण्ड कहा गया है। माया के प्रभाव से ही भेद दृष्टि का सृजन होता है। जीव अपने को किसी का पुत्र, किसी का पिता, किसी की प्रजा, किसी का राजा, किसी कुल वर्ण, आश्रम का मान रहा था। इस भ्रम की निवृन्ति हो जाने के बाद जीव यह निश्चय करता है कि मैं शुद्ध स्वरूप ईश्वर का अंश चेतन, अमल हूँ। ये माया कृत संसारी नाते झूठे थे। अब ब्रह्म का अंश होने से दोनों के बीच अंश–अंशी सम्बन्ध कायम हो जाता है। बूंद और समुद्र एक ही हैं। उसी प्रकार वह मै ही हूँ।

ब्रह्म सूत्र में कहा गया है कि जीवो ब्रह्मैवनापरः जीव ही ब्रह्म है। वह कोई दूसरी सत्ता नहीं है। 'र्सोऽहसस्मि' वृन्ति दृढ हो जाने पर सर्वत्र ब्रह्म के ही दर्शन होते है। गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरितमानस के उत्तराकाण्ड में ज्ञानदीप का यही विषय है। प्रसंग की समाप्ति में उल्लेख है–

आतम अनुभव सो सुप्रकासा। तब भवमूल भेद भ्रम नासा।।

– पं0 चन्द्रिका प्रसादत्रिपाठी

अध्यक्ष – मानस समाज, झांसी

प्रसन्नता

यह अनुमान सही नही है कि जो सुखी और साधन सम्पन्न होता है, वह प्रसन्न रहता है। वस्तुस्थिति इसके विपरीत है। जो प्रसन्न रहता है। वही सुखी और साधन संपन्न है। प्रसन्नता विशुद्ध रूप से एक ऐसी मनोदशा है जो पूर्णतया आंतरिक संसस्कारो पर निर्भर रहती है। गरीबी में भी मुस्कराने और कठिनाइयों के बीच भी जी खोलकर हंसने वाले अनेक व्यक्ति देखे जा सकते है।

इसके विपरीत ऐसे भी अनेक लोग है जिनके पास प्रचुर मात्रा में साधन सम्पन्नता है, पर उनकी मुखाकृति तनी रहती है। क्रुद्ध चिंतित, असंतुष्ट, असहज, तनावग्रस्त, उद्धिग्न रहना एक मानसिक दुर्वलता मात्र है जो अन्तःकरण की दृष्टि से पिछड़े हुए लोगों में ही पाई जाती है। परिस्थितियां नहीं, मनोभूमि का पिछड़ापन ही इस क्षुब्धता का कारण है। उदात्त और संतुलित दृष्टिकोण वाले व्यक्ति हर परिस्थिति मैं हंसते–हंसाते रहते है। (वे जानते है कि मानव जीवन सुविधाओं–असुविधाओं, अनुकूलताओं और प्रतिकूलताओं में ताने–बाने से बुना गया है। संसार में अब तक एक भी प्राणी ऐसा नही उत्पन्न हुआ जिसे केवल सुविधाये और अनुकूलतायें ही मिली हों और कठिनाइयों का सामना न करना पड़ा हो। यदि वह इस विचार पर गहन अध्ययन करें तो वह महसूस करेगा कि तुलना में बहुत अच्छा एवं सुखी है।

हमारे पास जो प्रसन्नता है वह ईश्वरीय वरदान है। जन्म से ही सबको प्रचुर मात्रा मे मिली है। अब यह आप पर निर्भर करता है कि उस प्रसन्नता को जिसे शुभ देखने की आदत है वह सर्वत्र आनंद बटोरेगा, मंगल देखेगा, ईश्वर की अनुकंपा और लोगों की सद्भावना पर विश्वास रखेगा। ऐसी दशा में हंसने–हंसाने के लिए उसके पास बहुत कुछ होगा, किंतु जिन्हें अशुभ–चिंतन की आदत है, दूसरो के दोष, दुर्गुण और अपने अभाव, अवरोध खोजने की आदत है ऐसे लोगों को क्षुब्ध ही रहना पड़ेगा। वे असंमजस, खिन्नता और उद्धिग्नता ही अनुभव करते रहेंगे। रोष उनकी वाणी से और असंतोष उनकी आकृति से टपकता रहेगा। ऐसे व्यक्ति स्वयं दुःखी रहते हैं एवं अपने संपर्क में आने वाले को भी दुःखी करते रहते हैं। हमे कुद्ध, असंतुष्ट और क्षुब्ध नहीं रहना चाहिए। इससे मस्तिष्क में विकृतियां उत्पन्न होती है और बढ़ती चली जाती है। आग जहाँ रहेगी, वही जलाएगी। असंतोष जहां होगा वही विक्षेप पैदा करेगा और उससे सारा मानसिक ढांचा लड़खड़ा जाता है। जिसका प्रभाव आपके सोचने के दृष्टिकोण पर पड़ता है जैसी सोच वैसा ही व्यवहार मानव करने लगता है जैसा व्यवहार वैसा ही उसका व्यक्तित्व बन जाता है। कहा भी है :–

'जा की रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिन तैसी'

हर व्यक्ति जितना अपने दुखों से पीड़ित नहीं है उससे ज्यादा वह दूसरों के सुखों से पीड़ित है। यह उसकी संकीर्ण मानसिकता और छोटी सोच का ही परिणाम है कि वह दुखों का सृजन करता है। इसके बावजूद वह सोचता है कि ऐसा मेरे साथ क्यों हुआ या फिर दुनिया के सारे दर्द मेरे लिए ही क्यों बने हैं, जबकि अगर सोचा जाए तो महत्वपूर्ण यह नहीं होता है कि आप के पास पीड़ाऐं कितनी हैं जरूरी यह होता है कि आप उस दर्द के साथ किस तरह खुश रह जाते है। जब हमारी दिशाएं सकारात्मक होती है तो हम सृजनात्मक रच ही लेते है। हमें कृतज्ञ जिहंवा तो होना ही होगा, क्योकि

इसके बिना छोटी–छोटी तकलीफे भी पहाड़ जितनी बड़ी बन जाती है। एक जिन्दगी प्रसन्नता से जीता है, दूसरा उसे ढोता है। एक दुख में भी सुख तलाश लाता है, दूसरा प्राप्त सुख को भी दुख मान बैढता है। एक अतीत भविष्य में खोया रहकर वर्तमान को भी गंवा देता है।

जीवन में प्रसन्नता रहनी जरूरी है। प्रसन्नचित व्यक्ति ही महत्वपूण कार्य कर सकता है सभी धर्मो में महापुरुषों ने प्रसन्नता को एक विशेष स्थान दिया है। सिसरो से लेकर महात्मा बुद्ध तक कई दार्शनिकों व शिक्षकों ने प्रसन्नता को भरपूर बांटा है और उससे उत्पन्न हुयी खुशी को उत्सव के समान मनाया है। यह एक भावनात्मक व्यवहार है और अंत में इसका अच्छा प्रतिफल प्राप्त होता है। जितना आप प्रसन्नता पूर्वक व्यवहार करेंगे उससे कहीं अधिक सकारात्मक विचार आपके अन्दर उत्पन्न होगें।

'' आपकी मुस्कुराहट आपके चेहरे पर भगवान के हस्ताक्षर हैं, उसको क्रोध करके मिटाने की अथवा आसँओ से धोने की कोशिश न करे।''

जीवन में कभी किसी से अपनी तुलना मत करो, आप जैसे है, सर्वश्रेष्ठ हैं, अद्‌भुत है। मानव का वस्तिविक स्वरूप आनन्दमय ही है।

संकलनकर्ता –
– डॉ0 रंजना शर्मा

आत्म चेतना

अभाव में भी भाव भरे हो
निजता में सम्मान भरे हो।
तन–मन सब परमात्म तत्त्व का
फिर क्यों निज–मन, शान्ति हरे हो।।
आत्म और परमात्म तुम्हीं हो
प्रभु का भी सम्मान तुम्हीं हो।
प्रारब्धों के भोग तुम्हीं हो
सभी मान–अपमान तुम्हीं हो।।
कोयल की कुहकें भी तुम हो
नदियों की भी कलकल तुम हो।
चन्दा की शीतलता तुम हो
मन की सारी हलचल तुम हो।।

जीवन के भी रंग तुम्हीं हो
भावों के उद्वेग तुम्हीं हो।
शान्ति हेतु स्वरूप तुम्हीं हो।
अन्तस् के भी वेग तुम्हीं हो।।
चेतन की शक्ति तुम्हीं हो
आनन्द का स्फुरण तुम ही हो।
फिर क्यों माया मोह बंधे हो
अपना तो बन्धन तुम ही हो।।
निज स्वरूप को जाने फिर तो
विमुक्त होंगे सुख–दुःख से हम।
कहते ''प्रमोद'' जीवन में फिर
तो कर्म–फल भी न होंगे मम्।।

प्रमोद कुमार गुप्ता
झांसी

''सामञ्जस्य'' नवीन - पुरातन में

बृद्धावस्था मानव जीवन की वह अनिवार्य अवस्था है जिसके उपरान्त मनुष्य इस जीर्ण–शीर्ण भौतिक देह को त्याग कर एक नवीन देह को अंगीकृत करता है। जीवात्मा एक स्वस्थ देह में प्रवेश करती है यही प्रकृति का नियम है।

पचास वर्ष के बाद मनुष्य की शारीरिक क्षमता कम हो जाती है। युवावस्था में सामाजिक दायित्वों को पूरा करते करते मनुष्य शारीरिक एवं मानसिक दोनो तरह से थक जाता है और लोग उसे निर्बल लाचार एवं अनुपयोगी समझने लगते है। शासकीय सेवा में लगे लोगों को तो वृद्धावस्था में पेंशन योजना का लाभ मिल जाता है किन्तु सर्व साधारण को यह सुविधा नहीं मिलती एवं उन्हें अपनी संतान पर आश्रित होना पड़ता है और जिनके संतान नहीं होती वे बेसहारा हो जाते हैं।

मानवता और नैतिकता के अनुसार तो वयोवृद्धों की सेवा एवं संरक्षण उन्हें करना चाहिए जो इन की मेहनत की कमाई खा कर समाज में स्थापित हुए हैं किन्तु आज युवावर्ग का दृष्टि कोण बदल चुका है। आज घर के बुजुर्गो को परिवार का बोझ माना जाने लगा है। आज के माता पिता की बिड़म्बना है कि उनका प्यार दुलार पाने वाले युवा बच्चे की उनकी सेवा से मुह मोड़ने लगे हैं।

वैयक्तिकता की प्रवृति के परिणाम स्वरूप दायित्व हीनता की भावना तेजी से पनप रही है जिसके कारण बुजुर्गो को आसह्न मानसिक पीड़ झेलना पड़ रहीं है। युवावर्ग की सोच बहुत संकीर्ण हो गई है। जबकि युवाओं को ये सोचना चाहिए कि वृद्ध जन कभी भी निरूपयोगी नहीं होते वे अपने अनुभवों एवं अन्तर्दृष्टि के कारण हमेशा परिवार के लिए हितकर साबित होते है। छोटे बच्चों के पालन पोषण में बुजुर्गो का अनन्य योगदान होता है। परिवार में आगन्तुकों का स्वागत सत्कार शिष्टाचार एवं सतर्कता का समन्वित रूप हम वुजुर्गो की सहायता से ही निभा पाते है।

अपने उत्तर दात्यित्वों से बचने के लिए कुछ युवा वर्ग यह तर्क देते हैं कि बुजुर्ग लोग अपने अनुभवों को परिवार पर दुराग्रह के रूप में थोपते हैं किन्तु ऐसा अपवाद स्वरूप ही होता है। आज का हर बुजुर्ग या माता–पिता अधिकांशतः पढ़े लिखे होते है और जो शिक्षित नहीं भी अपने अनुभवों एवं जीवन के संघर्षो से पूर्णतः परिपक्व हैं, उन्हें कार्य और परिणाम का ज्ञान हो ही जाता है और इसी कारण वो युवाओं को ऐसे कार्य करने से रोकते हैं जो आगे चलकर हानिकारक या प्रगति में बाधक होते है।

आधुनिक युग में परिवारों का विघटन वास्तव में दो पीढ़ियों का संघर्ष है वृद्ध व्यक्ति अपनी पिछली मान्यताओं के अनुसार युवा वर्ग को गलत साबित करते हैं जबकि युवा वर्ग उन्हें पिछड़ा हुआ समझ कर उनकी उपेक्षा व तिरस्कार करते हैं। यहां आवश्यकता है विचारों में आपसी तालमेल की तथा व्यवहार में सामंजस्य की। यदि घर के बुजुर्ग व्यक्ति बच्चों के हर फैसले को गलत न समझे तथा उनके हर कार्य में मीनयेख या नुक्ताचीनी न करें तथा जीवन के अपने हर फैसले को उन पर थोपने की कोशिश न करें एवं समय तथा पीढ़ी दर पीढ़ी के परिवर्तन को ध्यान में रख कर अपने जीवन के अनुभवों से उनको सहजता से प्रभावित करें तो शायद घर को सुख शांति का स्वर्ग बनाया जा सकता है।

कमी हर इन्सान में होती है युवा वर्ग में भी और वयो वृद्धों में भी। पहले के समय में अधिकांशतः मनुष्य सिद्धान्तवादी हुआ करते थे, उनकी कट्टर वादिता परिवार के सदस्यों को झेलना ही पड़ती थी। परन्तु आधुनिकता की दौड़ एवं बौद्धिक उन्नति के तहत आज की युवा पीढ़ी समयानुसार व्यवहार में विश्वास करती हैं उनके लिए पुराने सिद्धान्त एवं मान्यताएं दैनिक गतिशील जीवन में बाधक सिद्ध होते है। और किसी सीमा तक उनकी ये सोच उचित भी कही जा सकती है क्योंकि यदि वे समाज की गतिशीलता में भागीदार न बन सके तो वे जीवन की दौड़ में पिछड सकते हैं अतः उन पर प्राचीन नियमों या बन्धनो को थोपना एक मूर्खता पूर्ण निर्णय होगा लेकिन इस कथन का तात्पर्य ये बिल्कुल नहीं है कि युवावर्ग आज की इस आपाधापी में अपने उत्तरदायित्वों से मुक्त होकर जीना चाहे। उसे इस बात का हमेशा ध्यान रखना होगा कि जिस मुकाम पर आज वो स्थित हैं यहाँ तक पहुँचाने में उनके माँ–बाप का खून–पसीना एक हुआ है। अपनी निजी आवश्यक इच्छाओं का दमन करके भी माँ–बाप अपनी सन्तान को एक उज्जवल भविष्य देने की कोशिश करते है उनके इस बलिदान को झुठलाया नहीं जा सकता।

समाज घर और परिवार को प्रेम और सौहार्द्र से यदि सजाना है तो इन दो पीढ़ियों में सामञजस्य आवश्यक है। युवा पीढ़ी को चाहिए कि वो अपने बुजुर्गो को यथोचित सम्मान से विभूषित करें एवं उनके वृद्ध जीवन का ध्यान रखें तथा उन्हें प्रेम और सहिष्णुता के साथ आदृत करें।

दूसरी तरफ मैं बुजुर्ग वर्ग से भी ये कहना चाहूँगी कि युवा वर्ग कल भी हमारे बच्चे थे और आज भी हमारे बच्चे है। हमारी ताकत हमारी हिम्मत जो भी है हमारे बच्चों से ही है। हम जब युवा थे हमारे बच्चे अपना बचपन जी रहे थे उस समय उनकी हर गलती को समझाना एवं माफ करना आदि जो हम तब कर सकते थे तो आज क्यों नहीं कर सकते! क्या आज ये हमारे बच्चे नहीं रहें। यदि हम ये कहें कि कल वो छोटे थे उन में समझ व अक्ल की कमी थी, आज वो समझदार हो गये है उन्हें हम से गलत व्यवहार नहीं करना चाहिए। ये बिल्कुल ठीक है लेकिन हम ये भी कहना चाहेंगे कि उस समय हम युवा हुआ करते थे हमारी सोच समझ इतनी परिपक्व और वृद्ध नहीं हुआ करती थी लेकिन आज हम उम्र के उस पड़ाव में है जहाँ हम जीवन की प्रत्येक मधुर एवं कठोर परिस्थितियों को सहन कर चुके हैं हमारी सोच, हमारी विचार धारा में सहन–शक्ति और क्षमा का एक अपूर्व स्थान होना चाहिए क्यों कि हमारा भूत भी हमारे बच्चे थे, हमारा वर्तमान भी हमारे बच्चे हैं और हमारा भविष्य भी यहीं बनेगे आज चल अचल सम्पत्ति जो भी हमारा है उसके भोग कर्ता हमारे बच्चे ही होंग।

निष्कर्षतः पीढ़ी या समय के परिवर्तन में हमारा सहयोग अपेक्षित है। सारांश मात्र इतना है कि नयी पीढ़ी में थोड़ी सी संवेदना हो ताकि व बुजुर्गो के अनुभवों से लाभान्वित हो सकें एवं वृद्धजनों में थोड़ी सी सहनशीलता एवं क्षमा का भाव हो ताकि वे अपनी सन्तान को गुमराह होने से बचा सकें।

इसी को नूतन–एवं पुरातन का 'सामञ्जस्य' कहा जाएगा।

– कुमकुम बिसारिया

आदर्श नगर, झांसी

अकृत परमात्मा

परमात्मा को जानने के लिए किसी भी प्रकार के कोई कर्म करने की आवश्यकता नहीं है, वह तो अकृत यानी नित्य रहने वाला कूटस्थ है। सारे के सारे किये गये कर्म अनित्य यानी कि हमेशा रहने वाले नहीं हैं। इसलिए नित् सत् स्वरूप अविनाशी परमात्मा को किसी भी कर्म द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता है। कर्म से जो कुछ भी प्राप्त होता है वह अनित्य ही होता है। वह तो अहर्निश, सर्वत्र व्याप्त है। संसार के आकर्षण में हम सभी इतना रम जाते हैं, कि यह दृश्य जगत ही यथार्थ में वास्ताविक प्रतीत होता है। परमात्मा सर्वत्र, सदैव रहने वाला है किन्तु उसकी उपस्थिति होते हुए भी हमारे द्वारा न जान पाने के कारण ही ऐसा आभास पाते हैं कि जैसे परमात्मा अन्यत्र या किसी कर्म से प्राप्त करने वाला साधन साध्य हो यह भ्रांति भी एक भटकाव ही होती है ब्रह्मनिष्ठ गुरू के लखाने पर भ्रांति दूर होते ही फिर सारे जगत में उसी के स्वरूप की अनुभूति पा जाते हैं। इसके लिए

तद्विद्धि प्राणिपातेन परिप्रपूनेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तन्त्वदर्शिनः।। श्री मद् भगवद् गीता 4:34

उस ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करने के लिए तत्त्व को जानने वाले ज्ञानी पुरूषों से भली प्रकार दण्डवत्–प्रणाम तथा सेवा और निष्कपट भाव से किये हुए प्रश्न द्वारा उस ज्ञान को जानकर, वे मर्म को जानने वाले ज्ञानीजन उस ज्ञान का उपदेश करेंगे।

फिर खोजने का प्रयास किये बिना ही परमात्मा का अपने ''मैं'' के ही रूप में अनुभव करने लगते हैं। संसार का आकर्षण इस मस्तिष्क में इतना गहरा व्याप्त हो चुका है कि परमात्मा की स्फुरणा पा लेने के बाद भी, अनेक बार नित्य आनन्द प्राप्त करने का साधन संसार ही है ऐसी पुनरावृत्ति होती रहती है, जब तक कि स्थिर रूप से परमात्मा के नित्य होने का ज्ञान मस्तिष्क में नहीं बैठ जाता है। इसके लिए अन्तःकरण की शुचिता बनाए रखने का सतत् ध्यान रखने की आवश्यकता होती है, जिसके लिए ही इस शरीर द्वारा नित्य स्वाध्याय, चिन्तन एवं सत्संग करते रहना सरल साधन है। कभी–कभी जब मन संसार में रमकर इसे ही पूर्ण सत्य मानने लगता है और बीच–बीच में इन क्षणिक आने वाले व्यवधानों से मन मस्तिष्क को विरत नहीं कर पाते तब उपर्युक्त साधनों के द्वारा परमात्मा की नित्यता का बोध पाने में सहजता होती है।

अगर हम कहें कि हमने उसको जान लिया है तो यह उचित नहीं है क्योंकि वह किसी के जानने में आने वाला नहीं है। जो भी उसके लिए कहता है कि मैंने उसको जान लिया तो यह भी उसका अंहकार है और वह झूठ बोलता है। इसलिए मैं ऐसा कहता हूँ कि मैंने उसको जाना भी है और नहीं भी जाना लेकिन मेरे जानने और नहीं जानने को वही समझ सकता है ''जिसने उसको जाना है'' परमात्मा का अनुभव अपने ''मैं'' के रूप में करने पर उसको कण–कण में व्यापक जान लिया जाता है। कहने का सीधा सा तात्पर्य यह है कि परमात्मा को मानना नहीं है उसको केवल अनुभव करना है। इसलिए परमात्मा की शक्ति, प्रकाश, चैतन्यता को जानने के बाद कुछ भी जानना शेष नहीं रहता बस

उसको जानने के बाद हम नित्य आनन्द में डूब जाते हैं वही आनन्द हमारा स्वरूप है। जानने का ज्ञान और न जानने के अज्ञान का बोध भी कोई महत्व रखने वाला नहीं रह जाता, क्योंकि ज्ञान की स्थिति में वह है परन्तु जब अज्ञान था तब भी तो वह था। यह भिन्न विषय है कि उसका अनुभव न कर पाने के कारण परमात्मा को पाने की प्यास में हम भटक रहे थे और संसार में भिन्न–भिन्न समस्याओं से ग्रसित होकर दुखों को प्राप्त कर, अशान्त होते रहते थे। यह भी नहीं जान पाते कि सारा दृश्य जगत् तो हमारे और सबके कर्मो से ही निर्मित रचना है।

कहते हैं कि जैसा बोओगे वैसा ही पाओगे तो सुख–दुःख, अच्छी–बुरी स्थिति में यह न सोचें कि परमात्मा ने ऐसा किया। अच्छा हो या बुरा सब कुछ उसी के प्रकाश में हो रहा है, जो भी है वह हमारे ही कर्मफलों से जनित है अच्छा करेंगे तो अवश्य ही अच्छा पाऐंगे।

यहाँ मनुष्य के यथार्थ लक्ष्य की ओर दृष्टि डालें तो मात्र सांसारिक सुख पाने के लिए यह शरीर नहीं है। वास्तव में नित्य आनन्द हमें मिलता रहें इसके लिए

त्यत्वा कर्मफलासग्ड़ नित्यतृप्तो निराश्रयः।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किञचत्करोति सः।। श्री भगवद् गीता 4:20

जो पुरूष सांसारिक बंधन से रहित सदा परमानन्द परमात्मा में तृप्त है, वह कर्मो के फल और संग अर्थात् कर्तृत्व अभिमान को त्यागकर कर्म में अच्छी प्रकार बर्तता हुआ भी कुछ भी नहीं करता है। जीवन में इस शरीर से होने वाले सब कर्म परमात्मा के लिए, उनकी ही प्रेरणा से, उन्हीं के द्वारा किये जा रहें ऐसा जानकर करने पर निश्चित रूप से कर्मफल के बंधन से मुक्त होकर निर्वासनिक अवस्था को पा जाते हैं। जिससे संसार में कर्म करते हुए भी कर्मफल के उत्पन्न दोष से प्रभावित हुए बिना रहकर नित्य आनन्द को पाते हैं। फिर आनन्द प्राप्त करने की वस्तु नहीं होती वह तो सदा से था, है और हमेशा रहेगा ! गुरू के द्वारा दिखाये मार्ग से दर्पण पर पड़ी अज्ञानता को धूल को हटाकर आनन्दरूपी दर्पण की चमक को प्राप्त करना कुछ प्राप्त किया इसका भी लोप होकर, सारा जग आनन्दमय दिखने लगता है।

प्रमोद कुमार गुप्ता

झाँसी

उपासना एक प्रकार का पौरूष है, मानसिक व्यायाम है। जिसकी सहायता से हम उन्नति कर सकते हैं। प्रयत्न पौरूष का फल अथवा ईश्वरीय कृपा एक ही वस्तु है शब्द रचना दो प्रकार की है परन्तु भावार्थ एक ही है। व्यायामशाला में मुदगर निस्पृह होते हैं तो भी उनकी सहायता से पुरूषार्थी पहलवान अपना शारीरिक बल बढ़ाते है। इसी प्रकार निस्पृह और निर्विकार ईश्वर की सहायता से मानसिक व्यायाम करके हम लोग अपनी आध्यात्मिक उन्नति कर सकते हैं।

गुरू आरती

आरती करो गुरूजी की करो, सब मिलके करो गुरूवर की।
आरती करो गुरूवर की।।

1. गुरू ने सबका कष्ट मिटाया, रोते हुए को गुरू ने हँसाया।
गुरू आश्रम में जो भी आया, उसने यहाँ सब कुछ पाया।।
मन के मैल को धोकर जल्दी करो आरती गुरू की,
आरती करो गुरूवर की।।

2. जग के मायाजाल को तोड़ो, गुरू आश्रम की ओर ही दौड़ो।
सब कुछ भूलभाल कर के तुम, गुरू की ओर चिन्त को मोड़ो।।
देखो समय न जाने पाये, करो आरती गुरू की,
आरती करो गुरूवर की।।

3. गिनती भाग्यवान में होती, गुरू की शरण जिन्हें मिल जाती।
मन कामना पूर्ण हो जाती, गुरू की कृपा उन्हें मिल जाती।।
''लंकेश'' मोह माया को छोड़कर करो आरती गुरू की,
आरती करो गुरूवर की।।

आरती करो गुरूजी की करो, सब मिलके करो, गुरूवर की,
आरती करो गुरूवर की।।

निवेदक – इं0 जे0 पी0 गंगेले (लंकेश)
झाँसी

जीव साधना

हमेशा मौन रहने वाले रमण महर्षि कभी–कभी वाणी से उपदेश दिया करते थे। ऐसे ही प्रसंगों में पाल ब्रंटन ने एक प्रश्न पूछा – क्या सत्य की खोज के लिए संसार त्यागना जरूरी है ? रमण महर्षि बोले – कर्म सन्यास की आवश्यकता नहीं है यदि तुम नित्य एक–दो घण्टे भी ठीक से ध्यान कर लोगे तो सांसारिक कर्तव्यों का त्याग करने की जरूरत नहीं पड़ेगी। यदि तुम्हारा ध्यान ठीक मार्ग पर चलता रहा तो एक सशक्त विचारधारा तुम्हारे मस्तिष्क में उत्पन्न होगी तुम कोई भी काम करते रहो, कहीं भी रहो वह भावधारा तुम्हारे तन–मन में बहती रहेगी ध्यान में तुम जिस मार्ग का अनुसरण करने का जो दृढ़ निश्चय करने का निर्णय लोगे वही कार्य तुम्हारे क्रिया कलापों में भी क्रमशः प्रकट होने लगेगा। हर सामान्य जीवन जीने वाला व्यक्ति यदि इतना करता रहा तो उसकी 24 घण्टें की जीवन साधना पूरी हो जायेगी।

महर्षि का यह उत्तर हम सब के लिए है।

''परमपूज्य गुरुदेव स्वामी विश्वम्भरानन्द जी का आशीर्वाद''

है जेहि जाने बिन जगत, मनहुं जेवरी साँप।
नसत भुजंग जग जेहि लहै, सोऽहम् आपहि आप।।

उपदेश दि0 4.4.92

परम श्रद्धेय ब्रह्मनिष्ठ सन्तजन एवं हे सौम्य, अभिन्न आत्माओं!

सुनने योग्य चीज वेद और सदगुरू के वचन हैं। संसार के अज्ञानी जीवों को जो नित्य प्राप्ति में अप्राप्ति का भ्रम हो रहा हैं, सद्गुरू देव उस भ्रम को दूर कर देते हैं।

एक समय मैत्रयजी कैलाश पर्वत पर भगवान् शंकर जी के पास गये और उनसे प्रार्थना की कि आप कृपा करके परम तत्व कहिए। तब शंकर जी ने कहा कि देह देवालय है। जीवात्मा शिव है। अज्ञान रूपी निर्माल्य अलग करके सोऽहम् भाव से पूजन करें। सोऽहम् अजपा गायत्री है, मोक्ष देने वाली है। सोऽहम् के जाप में जब स्वास भीतर जाती है तब सो का जाप होता है। और जब श्वांस बाहर आती है तब हम का शब्द निकलता है। एवं बुद्धा पराजीवः पास मुक्ता सदा शिवः। सोऽहम् मंत्र महान उपयोगी है। इससे कल्याण होता है। इस मंत्र को सभी को धारण करना चाहिए। अंग्रेजी भाषा में सो का अर्थ है – ऐसा, किन्तु संस्कृति में सो का अर्थ है – वह। इसी सोऽहम् को परब्रह्म, आत्मा, परमेश्वर भी कहते हैं।

देवियों का दुनिया में एक ही पति पुरूष है। स्त्रियां अपने पति को वह कहकर संकेत करती हैं। देवियों के विचार में पति ही परमेश्वर है। रामायण में नारियों को शिक्षा दी गई है –

''नारि धरम पति देव वेद नित यही बखाने। ब्रह्मा, विष्णु, महेश नारि, पति ही को जाने।।

वेदों में जो शब्द का अर्थ परमेश्वर है, अपना निज स्वरूप सत् मात्र है शुद्ध है, सर्वाधार है। यह विचार सदैव हृदय में रखना चाहिए। फारसी भाषा में हमका अथ्र में से है। सोऽहम् में से एच को निकालकर आई को रखने से सो आई एम (SO I AM) की उपलब्धि हो जाती है। इसका अर्थ होता है कि वह (परमात्मा) मैं हूँ। जो सब में है, जिसे करके सब है – सोऽहम्! इसमें ओउम भी स्थित है।

स्वांसा से सोऽहम् भयो, सोऽहम् से ओंकार। ओंकार से रर्रा भयो, साधू करो विचार।।
उलट घर अपने आओ। घट–घट व्यापक ब्रह्म सिमिट कर ताहि समाओ।
''निज सुख बिन मन लहै कि थीरा''

नदियों का बांध बांधने से वे रूक जाती हैं परन्तु स्थिर नहीं होती हैं। स्थिर तभी होती है जब वे अपने केन्द्र अर्थात समुद्र में जाकर मिल जाती हैं। पक्षी अपने घोंसले से आकाश में जब उड़ता है तब उसे चैन नहीं मिलता। अपने घर, घोंसले में वापस आने पर ही उसे विश्राम मिलता है। इसी प्रकार जब प्राणी अपने घर में आता है तभी सुख पाता है। अपना घर क्या है – ''सोऽहम्'' सोऽहम् (Soham) में एस और एच को निकाल दें तो हमें ओउम् मिल जाता है।

स्वांसा में सोऽहम् सोऽहम्, हर वक्त हो रहा है।
ढूंढे जिसे तू हरदम, मैं हूँ मैं हूँ बता रहा है।

देवियाँ जब आपस में लड़ती हैं तब कहती हैं – अपनी (सोऽहम्) खबर करो। तीन – पाँच न करो अर्थात तीन शरीर, पाँच भूत मैं नहीं हूँ। मैं साक्षी हूँ। हम, तुम, यह वह सभी साक्षी में भास रहा है। इसीलिए सोऽहम शब्द का ध्यान हर समय रखना है।

नुकता ऊपर नुकता नीचे, नुकता आता जाता है।

खुदा जुदा में भेद नहीं है, नुकता भेद बताता है।।
जैसी सूरत ऐन की, बैसी सूरत गैन। मुहम्मद नुकता छोड़ दे, रहा ऐन का ऐन।।
ताल्लुक से बड़ी बरी रहना, हरूफे राम की मानिद।

उर्दू में जब राम लिखते हैं तो तीन अक्षर रे, अलिफ, और मोम लिखा जाता है। इन तीन अक्षरों में कोई नुकता नहीं है। इन तीनों से राम बनता है अर्थात् तीन गुणों का जो साक्षी है सो राम है। एक आदमी अलग दूर खड़ा है और देख रहा है। जो काम कर रहा है वह रजोगुण है जो जप कर रहा है वह सतो गुण है। जो सो रहा है वह तमोगुण है परन्तु देखने वाला इन तीनों से अलग है वह सोऽहम्। इस सोऽहम् की महान महिमा है। उस मन्त्र से गूंगा पुरूष भी मुक्त हो जाता है। सोऽहम् मंत्र हर समय चलता रहता है। कभी भी बन्द न हीं होता।

उर्दू में हे अक्षर होता हैं। उसके ऊपर एक नुकता रखने से खे बन जाता है। यदि इस हे अक्षर के बीच में तीन नुकता रखदें तो चे हो जाता है और नीचे नुकता रखदें तो जीम हो जाता है। यदि हे को निकाल दें तो न खे, न जीम और न चे है। केवल नुकता रह जाता है जिसका हे के बिना कोई अस्तित्व नहीं। जो लोग ईश्वर को ऊपर बताते हैं उनके लिए हे के ऊपर नुकता वाला खे ईश्वर है। जो लोग जीव को निम्न बताते हैं उनके लिए हे के नीचे नुकता वाला जीम जीव है और जो लोग माया को मानते हैं उनके लिये हे के बीच में तीन नुकता वाला चे, तीन गुणों वाली माया है। हे का अर्थ सोऽहम् है। अर्थात् आप ही से ईश्वर, जीव और माया सिद्धि हो रही है। आप के बिना नहीं।

"बैठे ठाढ़े परे उताने, कहें कबीर हम एक ठिकानें।।

जो भी सोऽहम् का ध्यान प्रातःकाल में करते हैं वे अवश्य मुक्त होते हैं। रामायण में कहा है –

सोऽहमस्मि इति वृत्ति अखण्डा। दीप शिखा सोई परम प्रचंडा।।
आतम अनुभव सुख सो प्रकाशा। तब भव मूल भेद भ्रम नासा।।

पूज्य सद्‌गुरू देव भगवान कहा करते थे कि अन्तिम स्वांस निकलने को बाकी हर जाय तो भी हम उसे सोऽहम् मन्त्र से मुक्त कर सकते हैं। हमारे सामने जो आता है उसे हम अपना स्वरूप बना लेते हैं। इस पर दृष्टांत है।

एक समय गोपियां यमुना जी में दीप दान कर रही थीं। श्री कृष्ण भगवान, जो दीपक नदी में बह रहे थे, उनको किनारे पर लगाने लगे। तब यशोदा मैया न कहा कि तुम किन किन को पार लगाओगे। श्री कृष्ण भगवान ने कहा – जो हमारे सामने आ जायेगा उसको पार कर देगे। इसी प्रकार जो सद्‌गुरू शरण में आ जायेगा उसे सोऽहम् मन्त्र के द्वारा पार कर देंगे। अहः हाः मैं धन्य हूँ मैं कृत्य कृत्य हूँ, मैं अपनी महिमा में स्थित हूँ।

धन्य धन्य गुरूदेवजी, हमें किया आजाद। जो भूले प्रभु आपको, सो होवे बरबाद।।

लहर कहे कि हमें जल की शरणागति लेना है, कपड़ा कहे सूत की, अंगूठी कहे सोने की, घट कहे मिट्टी की, जीव कहे कि हमें परमात्मा की शरणागति लेना है तो कहना पड़ेगा कि इन्होंने अपने स्वरूप को नहीं समझा है।

लहरी ढूँढे नीर को, कपड़ा ढूंढे सूत। जीव ढूँढ़े ब्रह्म को, तीनों ऊत के ऊत।।
(ऊत = अज्ञान)

राम कृष्ण मम रूप है, जिनका आदि न अन्त। यह रहस्य अति गूढ़ है, लखे विवेकी सन्त।।
अब्धि अपार स्वरूप मम, लहरी विष्णु महेश। विधि, रवि, चन्दा, वरुणयम, शक्ति धनेश गणेश।।

सन्तों का यही आशीर्वाद है कि तुम सच्चिदानन्द हो। जिन्होंने धारण किया उनका कल्याण हो गया।

शिवोऽहम्

ऊँ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

हे अमृत

''अहं ब्रह्मस्मि'' को भुलाकर,
ममत्व से समझौता करता है।
त्यागकर चाह ''सत् चिन्मय की,
जड़ जगत से झोली भरता है।
जो बुझाता प्यास मृगमरीचिका सी,
क्यों तू उसी की आस में मरता है।
नाना आभूषणों में होकर आकृष्ट
न स्वर्ण तत्व में ध्यान
जब है तू स्वामी नित्य आनन्द का,
क्यों क्षणिक सुख को तरसता है।
ब्रह्मनिष्ठ गुरू प्राप्ति है प्रमाण,
क्यो परमलक्ष्य तिरोहित करता है।
''क्षीणे पुण्ये मृत्युर्लोके विशन्ति''
तो क्यों न स्वरूप में उतरता है।
यदि करना ही है भोग तो,
क्यो न परमानन्द में रमण करता है।।

वेदान्त की दृष्टि से देखे तो माता–पिता ने जीव (बालक) के रहने के लिए केवल शरीर के लिए सामग्री उपलब्ध करवाई है। जीव तो उनके द्वारा उत्पन्न नहीं है। गीताजी में भगवान स्वयं कहते है–'' ममैवांशो जीवलाके, जीवभूतः सनातनः।''

अर्थात, हर प्राणी–जीव मेरा अंश है। हम सभी ईश्वर से सम्बन्धित हैं। जैसे हर लहर समुद्र से सम्बन्धित है, दूसरी लहर से नहीं। खलील जिब्रान ने ''दि प्रोफेट'' नामक पुस्तक में लिखा है कि ''बच्चें आपके द्वारा आते है, लेकिन आपके नहीं है।'' भगवान ही सबके माता–पिता–पितामह है–
''पिताहमस्य जगतः माता धाता पितामहः।।'' (9:17)

इस दृष्टि से देखे तो माता–पिता का कार्य बागवान की तरह है, जो जमीन को ठीक से तैयार करें, समय पर बीज बोयें उचित मात्रा में पानी–धूप देवे। अभिभावक की भूमिका ''पार्टटाईम'' नहीं है जो बच्चों को सिर्फ खाना, कपड़े, धन, आवास दें, बल्कि ''लाईफ टाईम'' है, जिसमें प्रत्येक क्षण बच्चों को संस्कारित बनाने के लिए उचित वातावरण बनाना है।

श्री मद्भागवत जी में कहा है कि वो पिता–माता–गुरू–पति सद्पिता–सद्माता–सद्पति नहीं है जो अपने पुत्र शिष्य, पत्नि को भगवान से न जोड़े, उसे भक्त न बनावें। अतः यदि हम चाहते है कि हमारे बच्चे राम–कृष्ण की भांति हो तो हमें कौशल्या–दशरथ या देवकी–वासुदेव जैसे संस्कारी भक्त, साधक, विनम्र, सरल बनना होगा तभी राम कृष्ण का अवतरण हमारे जीवन में होगा। जिससे पुनः राम राज्य की स्थापना होगी।

इति

– राघवेन्द्र ब्रह्मचारी
चिन्मय मिशन झाँसी

प्रात:काल उठि के रघुनाथा, मातु पिता गुरू नावहि माथा

भारतीय समाज का एक बड़ा शोभन पक्ष रहा है, बालक के संस्कार करने का। संस्कार माने जिसके द्वारा हम शुद्ध होते हैं। जो बालक संस्कार युक्त है, उसी को संस्कारी–सुसंस्कृत बोलते है। संस्कार से ही संस्कृति बनती है। यद्यपि भारतीय जनमानस इसके प्रति सजग रहा है। तथापि वर्तमान में ये संस्कार परम्परा क्षीण हो गई है। जिसके फलस्वरूप संस्कृत–संस्कारी बालकों की अपेक्षा विकृत प्राकृत बालकों का निर्माण हो रहा है। पूर्वकाल में बालक के आध्यात्मिक विकास को ध्यान में रखकर उसे यथायोग्य भौतिक सुविधायें प्रदान की जाती थी। यथा राम राजकुमार थे, पर संस्कार निर्माण हेतु उन्हें गुरूकुल में भेजा गया, जहाँ उन्होने अध्ययन तथा सेवा की–''गुर गृह गए पठन रघुराई।''

''प्रातकाल उठि के रघुनाथा। मातु पिता गुरू नावहि माथा।'' ये हमारे भारतीय जीवन की मर्यादायें थी। मातु पिता गुरू नावहि माथा।'' ये हमारे भारतीय जीवन की मयदियें थी। कृष्ण स्वयं भी सांदीपनि गुरू के पास अध्ययन हेतु रहें, जहाँ धनी–निर्धन का कोई भेद नहीं था। बालक का माता–पिता–गुरू को झुककर प्रणाम करना, उनके प्रति कृतज्ञता का प्रकटन था। ये अभ्यास नित्य होने पर यदि कभी बालक का माता–पिता से मतभेछ भी हो, जाये, तो भी वह विनम्र बना रहता था। उसकी वाणी में कटुता नहीं आती थी। वर्तमान में इस प्रकार के अभ्यासों का अभाव होने पर बच्चें अपने अभिभावकों से कहते हैं कि ये हमारा जीवन है, हम इसे अपनी इच्छानुसार स्वंतत्र रूप से जियेंगे जबकि न तो वे जीवन का अर्थ समझते है, और न ही स्वतंत्रता का।

इस परिस्थिति में हम सिर्फ इतना कहकर पल्ला नहीं झाड़ सकते है कि ये समय का फेर है या बच्चे बिगड़ गये है। क्योंकि इस स्थिति के निर्माता बच्चे नहीं है। इसके निर्माता तो वे हैं जो आज अभिभावक कहलाते है। संस्कृत में एक श्लोक है–

''लालयेत पंचवर्षाणि, दशवर्षाणि ताऽयेत्।

प्राप्ते तु षोऽशे वर्षे, पुत्रं मित्रवद् आचरेत्।।,,

अर्थात पाँच वर्ष तक के बालक को भरपूर प्रेम करें। उससे राजा या रानी के समान व्यवहार करें। अगले दस वर्ष तक ''ताऽयेत'' माने ''शिक्षयेत''।। उसको सीखावे, उसके साथ सख्त रहे, उसे अनुशांसित करें, शिक्षित करें। याद रखें सख्त होने का अर्थ निर्दयी होना नहीं है। सख्त होने का अर्थ है जिसे जिनते अनुशासन की आवश्यकता है, उतना करें। जब वे सोलह वर्ष की आयु के हो जाये, तो उनसे मित्र की भांति व्यवहार करें।

हम क्या करतें है। हम इस सलाह को उलट देते है प्रारम्भ में हम उसे मनमानी करने देते है और जब वे सोलह वर्ष के हो जाते है, तब हम उनसे पाँच वर्ष के बच्चे के समान व्यवहार करते हैं। तब वे खीसकर कहते है कि ''मै अब बच्चा नहीं हूँ। तब वे और उद्दण्ड हो जाते हैं। जबकि माता–पिता

चाहते हैं कि वे सज्जनता का व्यवहार करें।

यदि हम चाहते हैं कि हमारे बच्चे संस्कारी, सदाचारी, विनम्र बने तो, ये सारे गुण सबसे पहले हमें अपने अन्दर उत्पन्न करने होगें। गीताजी में ये बात बहुत स्पष्ट रूप से कही हैं–

''यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।'' (3:21)

अर्थात, जैसे जैसे श्रेष्ठ जन (माता, पिता, गुरू, नेता आदि) आचरण करते हैं वैसे ही अन्य सामान्य जब भी उनका अनुसरण करते है।

''यथा राजा तथा प्रजा'' यह बात केवल राजा–प्रजा के बारे में ही सच नहीं है, वरन् पिता–पुत्र, गुरू–शिष्य आदि परिस्थितियों में भी सही है। हमें स्वयं वैसा जीवन जीना होगा, जिसकी आशा हम बच्चों से करते है। हमें उनके सामने उत्कृट जीवन के उदाहरण बनना होगा, क्योंकि ''बच्चें वो नहीं करते जो आप कहते हो, बल्कि बच्चें वो करते है, जो आप करते हो।''

– राघवेन्द्र ब्रह्मचारी

चिन्मय मिशन, झांसी

ईश्वर का वास

कष्टों के निवारण के लिए मनुष्य हर समय भगवान से कुछ न कुछ मांगा करता है। मनुष्य की इस प्रवृत्ति से परेशान होकर भगवान ने देवताओं की एक बैठक बुलाई और कहा – मैं मनुष्य की रचना करके कष्ट में पड़ गया हूँ अब न तो मैं शांति पूर्वक रह सकता हूँ न ही ध्यान लगा पा रहा हूँ। आप लोग कोई ऐसा स्थान बताएं जहाँ हर मनुष्य न पहुंच सके, जो मेरा सच्चा भक्त हो वही मुझ तक पहुंच सके।

देवताओं ने गणेश जी से कहा आप हिमालय चले जाइए। इन्द्र ने कहा किसी महासागर में चले जाएं, वरूण ने सलाह दी की आप अंतरिक्ष में चले जाएं। भगवान ने कहा मनुष्य को वहाँ पहुँचने में भी समय नहीं लगेगा। तभी सूर्यदेव ने कहा आप मनुष्य के हृदय में बैठ जाइए इससे मनुष्य हमेशा आपको बाहर ही तलाश करेगा अपने अन्दर कभी नहीं झाकेगा। जो आपके अनन्य प्रेमी होंगे वही आप तक पहुंच सकेंगे। सूर्यदेव की बात भगवान को समझ आ गई और भगवान सभी मनुष्यों के हृदय में बैठ गये। उस दिन से मनुष्य हर बाहरी जगह भगवान को तलाश रहा है, लेकिन अपने अन्दर बैठे भगवान को नहीं देख पा रहा। भगवान हम सभी के हृदय में विराजमान हैं, यह सीख गुरू जी ही नें हम मनुष्यों को दी है अतः गुरूजी के चरणों में कृतज्ञता भरे शत्–शत् नमन्।

मानव जीवन की सफलता एवं सोपान

आधुनिकता की दौड़ में मनुष्य आज मानवता से कोसों दूर आ गया है। स्वार्थ और मोह में घिरा हुआ मानव आज उदर–पूर्ति के लिए दूसरे मानव का दुश्मन बन बैठा है। वह पढ़ा–लिखा एवं ज्ञानी होने के बावजूद आज स्वार्थवश पशुवत व्यवहार करने लगा है। लाखों योनियो के उपरान्त प्राप्त होने वाले अपने दुर्लभ मानव जीवन के परम उद्देश्य से भटक गया है। वह नही सोच पा रहा है कि मनुष्य जीवन का एक मात्र उद्देश्य है भगवत्प्राप्ति। मानव जब इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होता है तभी यथार्थ में मानवता का सूत्रपात होता है अन्यथा वह मानव–शरीर धारी पशु ही कहा जाएगा

यथोक्तं – **येषां न विद्या न तपो न दानम्, ज्ञानम् न शीलम न गुणों न धर्मः।**
ते मर्त्यलोके भुवि भार भूता, मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति।।

मनुष्य योनि में जन्म लेने के बाद भी जो केवल रोटी को ही एक मात्र ध्येय मानकर येन केन प्रकारेण उद्योग में लगा रहता है या फिर कामुकता को परम सुख मानकर यौन सम्बन्धों में ही अपने जीवन की पूर्णता समझता है वह मानव शरीरधरी होने पर भी मानव नहीं है। नरक की ओर ले जाने वाले तीन प्रधान कारण होते है काम, क्रोध और लोभ। ये मानव जाति के परमशत्रु हैं जो उसे अधोगति में घसीट ले जाते हैं इन तीनों में काम मोहिनी शक्ति है जो मनुष्य को वासना में लिप्त रख कर उसका पतन करती है। जबकि क्रोध राक्षसी शक्ति है एवं लोभ आसुरी शक्ति है। ये तीनों शक्तियां जीवधारी को दृढ़ बन्धनों में जकड़े रहती हैं। भगवान की कृपा एवं सत्संग के फल स्वरूप जब मानव को अपनी दुर्दशा का अनुभव होता है तो वह उस से निकलना चाहताहै परन्तु उस समय भी ये दुर्दान्त शत्रु उस का पीछा नहीं छोडते। लेकिन यदि सच्चे हृदय से मनुष्य आर्तनाद करता है तो ईश्वर अवश्य उसे नरक बन्धन से मुक्त कर देते है।

ज्ञातव्य हो कि प्रकृति स्वाभाविक अद्योगामिनी होती है। सत्वगुण सम्पन्न मनुष्य भी यदि सावधानी पूर्वक गुणातीत अवस्था में पहुँचने की कोशिश नहीं करता तो स्वतः ही उसका सतोगुण पहले क्रमशः रजोमुखी हो जाता है फिर धीरे–धीरे तमोमुखी हो कर अधोगति को प्राप्त हो जाता है। संसार के सभी क्षेत्रो में घोर फिसलन है। आसुरी शक्तियों के प्रलोभन से मनुष्य अधोगति को प्राप्त हो जाता है। ये शक्तियाँ मनुष्य को सांसारिक प्रलोभनों से आकृष्ट कर के उन्हें अध्यात्म एवं ईश्वर के सान्निध्य से विमुख कर देती है।

ये मनुष्य के विश्वास को ईश्वर से हटाकर प्रकृति में स्थापित कर देती हैं। प्रकृति में स्थापित होते ही मनुष्य स्थापित काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, ईर्ष्या और द्वेष से घिर जाता है।

यदि आसक्तियों से घिरा हुआ ऐसा मानव सौभाग्य से किसी सत्संगति या सत्पुरूष की संगत में आ जाता है तो वह उसे इन दुर्पुणों से हटा कर ईश्वर विश्वास परमार्थ, सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह सादगी एवं कर्तव्यपरायणता की ओर प्रवृत्त कर देता है एवं तब किसी महान आदर्श की आकृष्ट होकर मनुष्य की जीवन गति सतोगुण की तरफ घूमती है।

दुराचार, काम, क्रोध एवं लालच इन दुर्गुणों का परिणाम होता है विनाश, अघोपतन जबकि सद्गुण एवं सदाचार तथा सेवा भाव एवं अध्यात्य की ओर प्रवृत्ति मनुष्य को शाश्वत सत्य, आत्म सन्तोष एवं सच्चिदानन्द की प्राप्ति करानी है। आध्यात्म साधना में प्रवृत्त होकर सच्चिादानन्द की प्राप्ति करने वाला ही सच्चा मानव है। ईश्वर भक्ति एवं सत्साधना की ओर प्रवृत्ति ही मानवता का आरम्भ है एवं इस जीवन में स्थित होना ही सच्ची मानवता है तथा यही मानव जीवन की सफलता है।

– **कुमकुम बिसारिया**
आदर्श नगर, सीपरी बाजार, झांसी

भजन

-: सतगुरू का रूप निराला है :-

1. सतगुरू का रूप निराला है, अंदर से वह है निर्मल।
कुछ भी करें दुनिया में, आत्मा उनकी सदा है, निश्चल।।
2. वचन कर्म व कथन उनके, समझ पाना है, नही सरल।
बाहर से कुछ भी, दिख रहे हो, हृदय है उनका ब्रह्म कमल।।
3. गुरू कहीं भी रहते हो, खबर भक्तो की है, उनको हर पल।
हर स्थान में ढूढती हू मै, सुमिरन करती हूं हर पल।।
4. गुरू चरणो में लीन हो, मेरा मन और मेरी भक्ति।
पूरा ज्ञान न मिलने तक, रहना उनके साथ हर पल हरक्षण।।

– कृष्णा श्रीवास्तव
बण्डा (सागर) म0 प्र0

सतगुरू की महिमा

एक कहावत है, ''बिन मांगे मोती मांगे मिल न भीख''। सतगुरू कहते है, कि हमें मोह से वचना चाहिए। क्योकि सतगुरू बड़े दयालु है, वह अपने भक्तो की सभी आकांक्षाये बिन मांगे है पूरी कर देते है हमें गुरू के बताए मार्ग पर चलना चाहिए, तथा भक्ति में लीन रहना चाहिए। तब हमारे सभी कार्य अपने आप स्वयं ही होते चले जाएगे।

सतगृरू के चरणो में जिस दिन से तन, मन, धन अर्पण करोगे मन सतगुरू भक्ति में स्वतः ही लग जाएगा जीव के अंदर का मन बालक के समान होता है, मन हमारा मित्र है, व मन ही हमारा शत्रु है। कहा जाता है कि मन के पास हजारो हाथियों का बल है, इसलिए इस चंचल मन को तो सिर्फ सतगुरू के चरणों में समर्पित करके ही काबू मे किया जा सकता है।

मुझे पहले अपनी पहचान नहीं थी सतगुरू ने मुझे अपने आप को पहचानना बताया। बड़े भाग्य से मानव शरीर मिला है, इसको व्यर्थ नही खोना है, हमें गुरू के वाक्यों को अपने जीवन में उतारना है, तभी हमारा मानव जीवन सफल हो सकता है। 'रामायण' में लिखा है–

जे गुरू चरण रेनु सिर धरही
वे जन सकल विभव बस करही।

– कृष्णा श्रीवास्तव
बण्डा (सागर) म0 प्र0

भक्ति

परमार्थ पथ के मुख्यतः दो मार्ग हैं— ज्ञान और भक्ति जो साधक विचार प्रधान होते है उन्हें ज्ञानमार्ग सुगम लगता है। दूसरे साधक जिनमें भाव की प्रधानता होती है, उन्हें भक्ति का मार्ग सुहाता है। दोनों ही साधन चाहे ज्ञानयोग हो या फिर भक्तियोग, परमार्थ पथ के पथिक को चरम लक्ष्य तक पहुँचाने वाले हैं।

ज्ञान और भक्ति में से किसी को छोटा और बड़ा नहीं कहा जा सकता है। दोनो की ही अपनी महिमा है और दोनों एक दूसरे पर आश्रित हैं। जब तब परमात्मा का किञ्चित ज्ञान न हो उनसे प्रेम नहीं हो सकता और बिना प्रेम के परमात्मा का ज्ञान भी सम्भव नहीं है। इसलिए ज्ञानीजन भी भक्ति का आश्रय लेते है और भक्त लोग भी परमात्मा के प्रेम की महिमा गाते समय उसका ज्ञान अवश्य करते है। भगवान् स्वयं ज्ञानी को अपना भक्त बताते है और उसे अपना अत्यन्त प्रिय भक्त कहते है।—

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्ता एक भक्ति र्विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थ महं स च मम प्रियः।। गीता (7/17)

अर्थात उनमें (भक्तों में) नित्य मुझमें एकीभाव से स्थित अनन्य प्रेम भक्ति वाला ज्ञानी भक्त अति उत्तम है, क्योकि मुझको तत्व से जानने वाले ज्ञानी को मै अत्यन्त प्रिय हूँ वह ज्ञानी मुझे अत्यन्त प्रिय है।

इसीलिए भक्ति के साधनों में पहला स्थान ''सत्संग'' का है। जब संत महात्माओं की कृपा और उनका संग हमें प्राप्त होता है, तब शक्ति देवी का स्फुरण हमारे हृदय में होत है।

प्रथम भगति संतन कर संगा। भक्ति तात अनुपम सुख मूला।
मिलइ जो संत होई अनुकूला।।

परमात्मा के प्रति पूज्य भाव रखते हुए, उनके चरणों का आश्रय लेना ही भक्ति कहलाता है। जब हम संसार के माया—मोह से परे अमृत—शाश्वत स्वरूप परमात्मा से सम्बन्ध जोड़ लेते है, तो ऐसा प्रेम हमें अमृतत्व प्रदान करता है। ऐसी शक्ति हमें संसार के बन्धनों से छुड़ाने में सहायता करती है।

भक्ति कर्ता और क्रिया निरपेक्ष है। किसी भी जाति, कुल, बर्ण का व्यक्ति भक्ति कर सकता है।

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियों वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्।। गीता (9/32)

अर्थात स्त्री, वैश्य, शूद्र तथा पापयोनि चाण्डालादि जो कोई भी हो वे भी मेरे शरण होकर परमगति को ही प्राप्त होते है।

अपनी किसी भी क्रिया को हम भगवान को अर्पण कर सकते है यहा तक कि जो हम अन्दर—बाहर श्वास लेते व छोड़ते है, पलकों का झपकना आदि सब प्रभु के प्रति अर्पण कर दें। भक्त के लिए सर्वस्व उसका प्रभु ही होता है। अपना सम्पूण जीवन वह प्रभु की कृपा के आधीन मानता है।

संसार की संपूर्ण वस्तु प्राप्त करके भी जीव कभी संतुष्ट नहीं हो सकता क्योकि परमात्मा को प्राप्त किये बिना पूर्णता कभी प्राप्त नहीं हो सकती भगवान ही एक ऐसे है जिनसे सब तरह की पूर्ति हो सकती है। एक वही केवल पूर्ण है, उनके सिवा सब अपूर्ण ही है। वही इस सृष्टि के नियन्ता, सबके सुद्दद,

सर्वशक्तिमान हैं। वे अन्तर्यामी रूप में सबके हृदय में विराजमान हो सबके भावों, दुःखों को जानने वाले हैं। केवल इतना ही नहीं, बल्कि बिना कारण के सब पें कृपा भी करते है और उनके कष्टों का निवारण करते है। अपने भक्तों पर तो प्रभु की विशेष कृपा रहती है सम्पूण सृष्टि उन्हीं के आधीन रहकर अपना कार्य करती है। भक्त उन सर्वसुह्रद्, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान भगवान पर ही निर्भर होकर भक्ति करता है।

अलग–अलग भावों से भगवान् की भक्ति करने वाले भक्तो को चार भागों में बांटा है–

1. आर्त, 2. जिज्ञासु, 3. अर्थार्थी, 4. ज्ञानी

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थाथी ज्ञानी च भरतर्षभ।। गीता (7/16)

अर्थात हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन उत्तम कर्म करने वाले अर्थाथी, आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी–ऐसे चार प्रकार के भक्तजन मुझको भजते है।

आर्त– जिसको भगवान् स्वाभाविक ही अच्छे लगते हैं और जो भगवान् का भजन करता है। उसके पास जो सम्पत्ति है, जब उसका नाश होने लगता हे अथवा कोई शारीरिक कष्ट आ पड़ता है, तब उन कष्टों को दूर करने के लिए वह भगवान् को पुकारता है।

उदाहरण– ग्रह से मुक्त होने के लिए गजेन्द्र का श्रीहरि को पुकारना।

अर्थार्थी– भोग–ऐश्वर्य आदि पदार्थो की इच्छा लेकर जो भगवान् की भक्ति मे ंप्रवृत्त होता है। उसका मुख्य लक्ष्य भौतिक पदार्थ होते हैं। वह भगवान पर भरोसा रखकर धन–वैभव के लिए भगवान का भजन करते है।

उदाहरण– ध्रुव अचल पद पाने के लिए तपस्या करते हैं।

जिज्ञासु– जिज्ञासु के हृदय में सभी अर्थो के परम अर्थ परमात्मतत्व की प्राप्ति की इच्छा रखता है। आर्त और अर्थार्थी दोनों ही जिज्ञासु होकर भगवान को तत्व से जान लेते है। और अन्ततोगत्वा ज्ञानी भक्त की श्रेणीं में चले जाते है।

ज्ञानी– ज्ञानी सर्वथा निष्काम होता है। ज्ञान के द्वारा जिनकी चिज्जड–ग्रन्थि कट गयी है, ऐसे मुनि–ज्ञानी लोग भगवान की हेतूरहित भक्ति करते है। भगवान के अनन्य भक्तों में कोई कामना नहीं होती । उन्हें क्षणभर के लिए भी प्रभु का विस्मरण नहीं होती। वे तो नित्य–निरन्तर निष्कामभाव से भजन ही करते रहते हैं।

इसलिए अपने हर एक भाव को हम प्रभु की पूजा बना लें। जो कोई भी साधक अत्यन्त निर्मल भाव से प्रभु की आराधना करता है, उसे भक्ति रस के आनन्द का साक्षात् अनुभव होता है।

भक्ति परमात्मा तक पहुँचने का साधन भी है, और भक्ति का स्वरूप–परमात्मा का ही स्वरूप है इसलिए भक्ति साध्य रूप भी है।

नारद भक्ति सूत्र– '' सा तु अस्मिन् परम प्रेमरूपा''

अर्थात वह भक्ति निश्चय ही परमात्मा में परम प्रेमरूपा है।

वस्तुतः परमात्मा आनन्दस्वरूप है। हृदय में जब परमात्मा के प्रेम की अनुभूति होती है, तब वह भक्त को आन्नद देती है। इसलिये हृदय में परमात्मा के आनन्द की अनुभूति ही भक्ति है।

– ब्रह्मचारिणी गार्गी चैतन्य

"बिनु सत्संग विवेक न होई"

जब जीव के ऊपर प्रभु की अनन्य कृपा होती है और जन्म जन्मान्तर के पुन्य जागते हैं तभी जीव को सन्त के रूप में सद्गुरू की प्राप्ति होती है और उनके संग से सत्संग प्राप्त होता है। सत्संग का अर्थ यह है कि सत्य का संग सत्य तो केवल आत्मा ही है इस आत्मा के विषय में गीता में भगवान कृष्ण ने स्पष्ट शब्दों में कहा है –

नायं भूत्वा भाविता वा नभूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो नहन्यतेहन्य माने शरीरे।।

कहने का भाव यह है कि यह आत्मा सत्य–चित् और चैतन्य स्वरूप है जब कि शरीर असत और नाशवान है क्यों कि मानस में कहा है कि

'ईश्वर अंसजीव अविनासी। चेतन अमलसहजसुख रासी' का कहने का भाव यह है कि मोह और अज्ञान के कारण यह जीव अपने सत्य स्वरूप को भूल गया है और असत्य परिवर्तन शील और विनाशी शरीर को ही अपना स्वरूप मानकर सुख और दुःख के द्वन्द में फंसा है। जैसे शेर का बच्चा भेड़ो के बीच में रहते–रहते अपने शेर स्वरूप को भूल कर अपने को भेड़ ही मान लेता है। उसी प्रकार से ये संसारी जीव भी शरीर धारि परिवार और समाज के बीच में रहते–रहते अपने को शरीर मान लेता है और मै शरीर हूँ क्यों कि जब शरीर छोटा रहता है तो मै छोटा हूँ और जब शरीर बड़ा होता है तो मैं बड़ा हूँ। मैं मोटा हूँ, मैं दुबला हूँ, मै रोगी हूँ ये सभी अवस्थायें शरीर की होती है। जीवात्मा की कोई अवस्था नहीं होती है। वह सदैव एक सा ही रहता है।

सन्त या सद्गुरू अपने सत्संग के माध्यम से यह बताते है कि तुम शरीर नही हो, बल्कि शरीर में रहने बाले सत्–चिन्त शुद्ध चेतन्य आत्मा हो, यह शरीर तुम्हारा स्वरूप नहीं है, इसी का बोध हो जाना विवेक कहलाता है किन्तु संसार में रहते हुए जीव को मै, मेरा का भाव अर्थात मै शरीर हूँ और यह सब वस्तुऐं मेरे शरीर के नाम से जुड़ी होने के कारण मेरी है। शरीर जड़ है आत्मा चेतन्य है और इस आत्मा ने शरीर को अपना जो स्वरूप मान लिया है मै, मेरे की गॉठ ही जीव को सुख–दुख के झूले में झुला रही है और जन्म–मृत्यु के चक्कर में घुमा रहीं है तभी तो मानस में कहा है कि–

जड़ चेतनहिं ग्रंथि परि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनई।।
जब ते जीव भयउ संसारी। छूट न ग्रंथि न होइ सुखारी।।

और यदि जीव मै और मेरा पन को छोड़ना भी चाहे तो भी नहीं छोड पाता है क्योंकि जब भी यह मै और मेरा अर्थात मेरे–तेरे के भाव को छोड़ना चाहता है तब माया उसे छोड़ने नहीं देती है और यदि कहीं यह गुरू के द्वारा दिए गए ज्ञान से विवेक के उत्पन्न हो जाने से यह जन्म–मृत्यु के चक्र से छूट कर आत्म स्वरूप का वोध करके 'मोक्ष' को प्राप्त कर लेता है किन्तु बिना सद्गुरू की कृपा के सत्संग में आए बिना यह सम्भव नहीं है क्योंकि मानस में कहा है कि

छोरन ग्रंथि पाव जो सोई। तब यह जीव कृता रथ होई।।

छोरन ग्रंथि जानि खगराया। बिघ्न अनेक करइ तब माया।।

पर जब जीव के ऊपर गुरू की असीम कृपा होती है तब यह ज्ञान प्राप्त होता है, जैसे कि भरत को अपने गुरू वशिष्ठ के बचनों पर न केवल विश्वास ही हुआ, बल्कि अपने जीवन में उतार कर चलना शुरू कर दिया क्यों कि वशिष्ठ जी ने कहा था कि

सुनु नृप जासु विमुख पविताही। जासु भजन बिनु जरनि न जाही।।

भयउ तुम्हार तनय सोई स्वामी। राम पुनीत प्रेम अनुगामी।।

इसीलिए भरत ने यह निर्णय लिया कि राज भवन, परिवार, अधिकार, भोग सभी सुखों का परित्याग करके एक मात्र मुझे भगवान की शरण में जाना चाहिए। वे हाथ जोड़ कर कहते है कि

दोहा– आपनि दारूनदीनता, कहऊँ सबहि समुझाई।

देखे बिनु रघुनाथपद, जिय की जरन न जाई।।

इसी भाव को बताते हुए भगवान श्री कृष्ण जी ने गीता में कहा है कि

सर्वधर्मा न्यरित्यज्य भामेंकंशरणं ब्रज। अहंत्वा सर्वपापेम्योमोंन्क्षयिस्यामिमाशुचः।।

इसीलिए भरत जब राम से मिलने के लिए चले तो सबसे पहले अपने गुरू वशिष्ठ जी को आगे करके चलते है तो परिणाम यह होता है कि

परम प्रेम पूरन दोउ माई। मन वुधि चित अहमिति बिसराई।।

कहने का भाव यह है कि राम और भरत के मिलन में दोने ही भाई परम प्रेम में पूर्ण रूप से विलय हो गए थे। क्योंकि अतः कारण के अंग मन, बुद्धि, चित्त और अंहकार जब शरीर की इन्द्रियों से जुड़ते है तो इन्द्रियों का क्रियाशील बना कर शरीर भोगने के लिए जन्म–मृत्यु और सुख–दुःख के जाल में फसें रहते है किन्तु जब यही अतः करण शरीर को अपना रूप न मानकर मन और बुद्धि–चित्त में विलय होती है। अंहकार प्रभु के चरणों में समर्पित होता है तब तो ऐसी दशा हो जाती है जैसे कि आम का फल अपने छिलका और गुठली को छोड़ देता है और दूध और वर्फ अपने स्परूप को छोड़कर आम के रस में विलय होकर केवल आम का शीतल और मधुर रस ही रह जाता है उस प्रकार यह जव भी अपने मैं और मेरा पन को छोड़ कर भगवान की शरण में जाता है, तो परम, मधुर, आनंद और शान्ति का अनुभव करता है।

अब प्रश्न यह होता है कि राम और भरत के प्रेम में,

परम प्रेम पूरन दोऊ भाई। मन वुधि चित अहमिति बिसराई।।

इसका कारण यह है कि भरत पर गुरू वशिष्ठ जी का विशेष अनुराग था।

गुरू अनुराग भरत पर देखी। राम ह्रदय आनंद विषेरवी।।

क्योंकि जेगु रूपद अम्बुज अनुरागी। तेलोकहुँ वेदहुँ बड़ भागी।।

कहने का भाव यह कि सन्त और सद्गरू की कृपा से ही जीव अपने स्वरूप को परिचान कर विवेक होने के कारण मन, बुद्धि, चित्त और अंहकार को भगवान के चरणों में समर्पित करके सोहयस्मि इति बृन्ति अखण्डा। इस ज्ञान में मग्न होकर अपने जीवन को सुख, शान्ति से विता देता है। तभी तो कहा है कि ''बिनु सत्संग विवेक न होई''

– पं0 वेद प्रकाश त्रिवेदी

हिन्दी प्रवक्ता

राम से बड़ा राम का नाम

वेद–शास्त्र नाम की महिमा गाते है। कलिकाल में तो नाम ही आधार बताया गया है। जप, तप, यज्ञ, पूजा–पाठ सफल नहीं होते। भगवन्नाम एक मात्र कल्याण का साधन है।

एहि कलिकाल न साधन दूजा। जोग जग्य जप तप व्रत पूजा।
रामहिं सुमिरिअ गाइअ रामहि। संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि।।

कलिपावनावतार कविकुल चूड़ामणि काव्यकानन कलाधर – श्रीमद् तुलसीदास जी महाराज कहते है कि '' श्रीनाम'' महाराज जी तो ''नामी भगवान श्रीराम जी'' से बड़ा होता है। वे इतना कहकर ही सन्तुष्ट नहीं हो जाते बल्कि श्रीरामचरितमानस में दोना की विशद तुलनात्मक समीक्षा करते हुए उद्धृत करते है यथा–

राम	नाम
1. राम भगत हित नर तनु धारी। सहित संकट किए साधु सुखारी।।	1. नामु सप्रेम जपत अनयासा। भगत होहिं मुद मंगल बासा।
2. राम एक तापस तिय तारी।	2. नाम कोटि खल कुमति सुधारी।
3. रिषि हित राम सुकेतुसुता की। सहित सेन सुत कीन्हि बिबाकी।।	3. सहित दोष दुख दास दुरासा।। दलई नामु जिमि रबि निसि नासा।
4. भंजेउ राम आपु भव चापू।	4. भव भय भंजन नाम प्रतापू।
5. दंडक बन प्रभु कीन्ह सुहावन।	5. लन तन अमित नाम किए पावन।
6. निसिचर निकर दले रघुनंदन।	6. नामु सकल कलि कलुष निकंदन।।
7. सबरी गीध सुसेवकनि, सुगति दीन्हि रघुनाथ।	7. नाम उधारे अमित खल, बेद बिदित गुन गाथ।।

श्रीराम जी ने भक्तों की कामना पूर्ण करने के लिए मानव–शरीर धारण किया। अनेक संकट सहकर साधु समाज को सुखी किया, किन्तु नाम प्रेमपूर्वक जप करने से भक्त अनायास मंगलमय हो उठता है। श्रीराम जी ने एक अहल्या का उद्धार किया, नाम ने कोटि–कोटि दुष्टों एवं मतिहीन लोगों को सुधार दिया है। श्रीराम जी ने भव (शिव) के धनुष का भन्जन किया, तो नाम भव–भय का भंजन करता है। प्रभु ने एक दण्डकारण्य को अपने चरणों से सुहावना बनाया, तो नाम ने असंख्य जनमानस को पावन बनाया है। श्रीराम जी ने राक्षस दल का संहार किया, तो नाम कलि के समस्त पापों को नष्ट कर देने वाला है। श्रीराम जी ने शबरी, जटायु इत्यादि उत्तम सेवकों को सद्गति प्रदान की, तो नाम ने असंख्य पापियों का उद्धार किया है और उसकी गुन गाथा वेद विदित है।

8. राम सुकंठ बिभीषन दोऊ। राखे सरन जान सबु कोऊ।	8. नाम गरीब अनेक नेवाजे। लोक बेद बर बिरिद बिराजे।
9. राम भलु कपि कटकु बटोरा।	9. नामु लेत भवसिंधु सुखाहीं।

सेतु हेतु श्रमु कीन्ह न थोरा।।
10. राम सकुल रन रावनु मारा।
सीय सहित निजपुर पगुधारा।।
राजारामु अवध रजधानी।
गावत गुनसुर मुनि बर बानी।।
11. ब्रह्म राम तें.......................

करहु बिचारू सुजन मनमाहीं।।
10. सेवक सुमिरत नामु सप्रीती।।
बिन श्रम प्रबल मोह दलु जीती।।
फिरत सनेहँ मगन सुख अपनें।
नाम प्रसाद सोच नहिं सपनें।।
11. नामु बड़ बरदायक बरदानि।।

श्रीराम जी ने सुग्रीव जी और विभीषण जी को शरणागत देख अपना लिया, किन्तु नाम ने तो अनेकानेक जनों को कृतार्थ किया है। श्रीराम जी ने भालुओं–वानरों की सेना जुटायी और सेतु बाँधने के लिये इतना श्रम किया, किन्तु नाम लेने मात्र से भवसागर सूख जाता है। हे सज्जनवृन्द! जरा मन में इस पर विचार तो कीजिये, जरा इसे समझिये तो। श्रीराम जी ने युद्ध में रावण को मारा और सीता जी सहित अपनी नगरी को लौटे, किन्तु यहाँ तो भक्त प्रेमपूर्वक नाम लेकर ही, बिना श्रम के प्रबल मोह–दल को जीत लेता है और अपने प्रेमानन्द में मग्न होकर चारों ओर निर्द्वन्द्व घूमता फिरता है तथा नाम के प्रसाद से उसे स्वप्न में भी किसी बात की चिन्ता नहीं होती। इससे स्पष्ट हो जाता है कि ब्रह्म श्रीराम जी से उनका नाम बढ़–चढ़कर है।

नाम के प्रसाद से ही शिव जी अविनाशी है। और अमंगल वेश–भूषा में भी मंगलमय हैं। शुक–सनकादि सिद्ध मुनियों–योगियों ने नाम के प्रभाव से ही ब्रह्मसुख का भोग किया है।

नारद जी, ध्रुव जी, प्रहलाज जी, हनुमान जी सब नाम के प्रताप से इतने ऊँचे उठ गये। न जाने कितने पापियों को इसने तारा है। इसकी महिमा मै क्या कहूँ, स्वयं भगवान् श्रीराम जी भी अपने ही नाम के सम्पूर्ण गुणों का गान करने में असमर्थ हैं।–

कहाँ कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई।।

भाव से, कुभाव से, खीझ से, आलस्य से किसी भी रूप में भगवान्नाम स्मरण मंगलकारी है। यथा–(रा.च.मा. 1/27/1)

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

इसीलिए सन्त गोस्वामी तुलसीदास जी ने व्यक्त किया है–

तुलसी जाके बदन तें, धोखेउ निकसत राम। ताके पग की पगतरी, मेरे तनु की चाम।।

जिसके मुँह से धोखे मुं ''श्रीराम–नाम'' निकलता है, मेरे शरीर की चमड़ी उसके पाँव की जूती बनने योग्य है। (वै. संदीपनी– 37)

इस तरह जो अनन्य भाव से रात–दिन अपने प्रत्येक श्वास में नाम रटता है, इसकी तो संसार में कोई समता ही नहीं । सर्व सुख उसका अनुगमन करते है और उसका जीवन कृतार्थ हो जाता है।

– देवी शंकर मिश्र
सीपरी बाजार, झांसी

सत्य परमोधर्मः

बनारस में एक बड़े धनवान सेठ रहते थे वह विष्णु भगवान के परम भक्त थे और हमेशा सच बोला करते थे। एक बार जब भगवान सेठ जी की प्रशंसा कर रहे थे तभी माँ लक्ष्मी ने कहा स्वामी आप इस सेठ की इतनी प्रशंसा करते हैं क्यों न आज इसकी परीक्षा ली जाए और परखा जाए कि क्या वह वास्तव में इसके योग्य है या नहीं? भगवान बोले ठीक है अभी सेठ गहरी निद्रा में है आप उसके स्वप्न में जाएं और इसकी परीक्षा ले लें अगले ही क्षण सेठ जी को एक स्वप्न आया स्वप्न में धन की देवी लक्ष्मी उनके सामने आयी अैर बोली हे मनुष्य मैं धन की दात्री लक्ष्मी हूँ, सेठ को यकीन नहीं हुआ और वे बोले हे माता आपने साक्षात दर्शन देकर मेरा जीवन धन्य कर दिया बताइए मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ। कुछ नहीं मैं तो बस ये बताने आई थी कि मेरा स्वभाव चंचल है और वर्षों से तुम्हारे पास रहकर मैं ऊब चुकी हूँ और यहाँ से जा रही हूँ सेठ जी बोले मेरा आपसे निवेदन है कि आप यही रहो लेकिन यदि आपका यहाँ मन नहीं लग रहा तो भला मैं आपको कैसे रोक सकता हूँ और माँ लक्ष्मी उसके घर से चली गई। थोड़ी देर बाद वे रूप बदलकर पुनः सेठ के स्वप्न में यश के रूप में आई और बोली सेठ मुझे पहचान रहे हो। सेठ – नहीं महोदय! यश – मैं यश हूँ मैं ही तेरी प्रसिद्धि का कारण हूँ अब मैं तुम्हारे साथ नहीं रहना चाहता क्योंकि कि माँ लक्ष्मी तुम्हारे यहाँ से चली गई हैं अतः अब मेरा यहाँ क्या काम? सेठ – ठीक है यदि आप भी जाना चाहते हैं तो यही सही। सेठजी अभी भी नींद में थे उन्होंने देखा कि वे दरिद्र हो गये हैं और उनके मित्र व सम्बन्धी सभी दूर हो गये हैं उनके प्रशंसक भी उनकी बुराई करने लगे हैं।

कुछ समय बीतने पर लक्ष्मी जी सत्य के रूप में उनके स्वप्न में प्रकट हुई और बोली मैं सत्य हूँ और अब लक्ष्मी और यश और धन के जाने के बाद मैं भी जाना चाहता हूँ ऐसा सुन सेठ तुरन्त बोले भले ही सब मेरा साथ छोड़ दें सत्य के बिना मैं एक क्षण भी नहीं रह सकता। मैं आपको नहीं जाने दे सकता। लेकिन तुमने बाकी को बड़ी आसानी से जाने दिया उन्हें नहीं रोका? सत्य ने प्रश्न किया? भगवान वे भी मेरे लिए बहुत महत्व रखते हैं लेकिन उनके बिना भी मैं भगवान के नाम का जाप करके उद्देश्य पूर्ण जीवन जी सकता हूँ परन्तु यदि आप चले गये तो मेरे जीवन में झूठ प्रवेश कर जाएगा और झूठ के साथ मैं ईश्वर की वन्दना कैसे कर सकता हूँ। मैं आपके बिना नहीं रह सकता।

सेठ का उत्तर सुन सत्य प्रसन्न हो गया उसने सेठ से कहा तुम्हारी अटूट भक्ति ने मुझे रूकने पर विवश कर दिया और अब मैं यहाँ से नहीं जाऊँगा और ये कह के सत्य अर्न्तरात्मा हो गया। सेठ अभी भी निंद्रा में थे। कुछ क्षण बाद यश भी लौट आया और बोला जहाँ सत्य है वहाँ यश स्वतः ही आ जाता है, सेठ ने यश की अवभगत की और अंत में माँ लक्ष्मी आई उन्हें देखते ही सेठ नतस्मतक होकर बोले हे देवी क्या आप भी मुझे पर पुनः कृपा करेंगी। अवश्य जहाँ सत्य और यश है वहीं मेरा निवास है यह सुनते ही सेठ की नींद खुल गई उन्हें यह सब स्वप्न लगा पर वास्तव में वह एक कड़ी परीक्षा में उत्तीर्ण होकर गुजरे थे।

मित्रों याद रखो जहां सत्य का निवास होता है वहाँ यश धन और धर्म का निवास स्वतः ही हो जाता है।

'यत्र सत्यं तत्र लक्ष्मी'

अनन्त श्री विभूषित श्री श्री 1008 श्री स्वामी श्री अखण्डानन्द जी महाराज परमहंस

अनन्त श्री विभूषित श्री श्री 1008 श्री स्वामी श्री विश्वम्भरानन्द जी महाराज परमहंस

मुद्रक - वीर बुन्देलखण्ड प्रेस, झांसी फोन नं. 0510-2332931